श्री हरिः

शुकताल के सन्त

अनन्त श्री विभूषित परम भागवत सन्त

पूज्य श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज

की

'अमृतवाणी'

□

संकलनकर्ता :
कृष्ण प्रसाद शर्मा

प्रकाशक :
धर्म संघ प्रकाशन, ३८४, स्वामी पाड़ा, मेरठ-२

● प्रकाशक :
श्याम सुन्दर वाजपेयी
अध्यक्ष
धर्म संघ प्रकाशन
३८४, स्वामी पाड़ा, मेरठ–२ (उ० प्र०)
दूरभाष : ७३६३६

● फाल्गुन शुक्ला द्वितीया
विक्रम संवत् २०४२
(१२–३–८६)

● मूल्य : पांच रुपया

● मुद्रक :
नवयुगान्तर प्रेस,
शारदा रोड, मेरठ–२

सन्
जगत्
स्वा
आयु
श्री
उक्त
मुझे
से मैं
नारा
सन्या
उपस्थि
महार
किये

अपनी बात

'धर्मग्लानि-अधर्माभ्युत्थान-निवृत्तिपूर्वकं धर्मसंस्थापनार्थम्' के पावन संकल्प से सन् १६४३ में मेरठ में सहस्र चण्डी महायाग का आयोजन किया ज्योतिष्पीठ के जगद्गुरू शंकराचार्य श्री स्वामी कृष्णबोधाश्रम जी महाराज ने। धर्मसम्राट् पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज पैदल चलकर यज्ञ में पधारे थे। श्री रामसहाय आयुर्वेदिक महाविद्यालय गढ़ रोड मेरठ के भव्य भवन के जीवन-हाल में अनन्त श्री विभूषित स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। उक्त यज्ञानुष्ठान के दैनिक कार्यक्रमों एवं अभिभाषणों की रिपोर्टिंग करने का कार्य मुझे सौंपा गया था। इसी प्रसंग में कतिपय चित्रादि लेने एवं दर्शन लाभ के लोभ से मैं जब जीवन-हाल में पहुंचा तो धर्मसम्राट् हस्तप्रक्षालन कर रहे थे। ॐ नमो नारायणाय की और जैसे ही दूसरी दिशा की ओर उन्मुख हुआ तो एक अन्य युवा सन्यासी अपने भव्यरूप में विराजमान थे, मैंने ॐ नमो नारायणाय की तो तुरन्त वहाँ उपस्थित भक्त चन्द्रभानु ने मुझे बतलाया कि आप पूज्य स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज हैं, बड़े विद्वान एवं शास्त्रों के मर्मज्ञ हैं। बस यहीं मैंने उनके सर्वप्रथम दर्शन किये थे। तब से लेकर आज तक की ४३ वर्षों की अवधि में उक्त उभय महात्माओं ने भारत में जहाँ भी धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न किये वहाँ प्रातःकालीन भागवती कथा प्रायः इन्हीं स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज द्वारा सम्पन्न होती रही। सन् १६४३ और १६४४ में सहस्र चण्डी महायज्ञ, सन् १६६४ में श्री विष्णु महायाग एवं धर्मसंघ का २२वां महाधिवेशन, सन् १६७५ में महारुद्र यज्ञ, सन् १६७६ में श्री रुद्रमहायज्ञ के अतिरिक्त अन्य भी जितने धार्मिक अनुष्ठान, सत्संग, कथा, भागवत सप्ताह आदि आयोजन मेरठ में सम्पन्न होते रहे हैं उन सभी में हमें जगद्गुरु जी एवं धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी महाराज के साथ-साथ स्वामी श्री विष्णु आश्रम जी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त होता रहा है। महाभारत एवं पुराणों एवं श्री मद्भागवत की कथाओं का श्रवण कराके आप मेरठ में ज्ञान गंगा प्रवाहित करते आ रहे हैं। श्री कृष्ण बोध दण्डी आश्रम, मेरठ के भव्य भवन के निर्माण कार्य में आपका सहयोग निर्देश एवं आशीर्वाद निरन्तर मिलता रहा है। जगद्गुरु जी की पावन स्मृति को अक्षुण्ण बनाने के शुभ संकल्प से अपने आश्रम में ही 'श्री कालीचरण पौराणिक श्री कृष्ण बोध दण्डी आश्रम अन्न क्षेत्र की स्थापना करके दण्डी सन्यासियों की सेवा की स्थायी व्यवस्था की है। सन् १६८० में जब धर्मसम्राट् अन्तिम बार दण्डी आश्रम मेरठ में पधारे तो ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज के साथ-साथ स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज भी श्री कृष्ण बोध मन्दिर के सत्संग भवन में पूज्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज के साथ-साथ धर्ममंच पर आसीन थे। इस अवसर पर धर्मसम्राट् के साथ आपने जो धर्म चर्चा की वह महत्वपूर्ण थी। धर्म के प्रचार-प्रसार करने के पुनीत कार्य में सदा अग्रणी रहते हुए भागवत कथामृत का पान जनसाधारण को स्वामी जी निरन्तर करा रहे हैं। श्री शुकताल (मु० नगर) श्री विहार घाट (बु० शहर) श्री दण्डीवाड़ा (कानपुर) ग्वालियर, मोदीनगर, मेरठ, हापुड़, गढ़ मुक्तेश्वर, कलकत्ता, बरेली, मुजफ्फरनगर, दिल्ली आदि अनेक स्थानों पर धार्मिक जनों के संगठन एवं सत्संग का कार्य आपके ही प्रयास से सम्भव हो रहा है। इन विभिन्न अवसरों पर कुछ नोट्स आदि भी लिये गये, धर्मसंघ मेरठ के प्रधान पं० सूर्यभानु पाण्डेय जी की आंग्ल भाषीय दैनन्दिनी में कानपुर में जगद्गुरु जी के साथ किये गये चातुर्मास्य के अवसर के लिखे कुछ नोट्स मिले। जब यह पता चला कि फाल्गुन शुक्ला द्वितीया संवत् २०४२ से शुकताल में भगवती भागीरथी के पावन तट पर श्री मद्भागवत सप्ताह आपके ही सन्निधान में सम्पन्न हो रहा है जिसमें जगद्गुरु जी महाराज भागवत के प्रमुख वक्ता होंगे तो विचार हुआ कि पूज्य स्वामी जी के प्रवचनों के आधार पर एक पुस्तिका प्रकाशित की जाय। धर्मसंघ प्रकाशन मेरठ के प्रधान श्री पं० श्याम सुन्दर वाजपेयी जी तुरन्त इस ओर प्रवृत्त हुए और स्वामी जी से इसकी अनुमति प्राप्त कर इस कार्य में अग्रसर हुए तो मेरठ में तथाकथित साम्प्रदायिक उपद्रव के कारण प्रेस, बाजार आदि सब बन्द रहे, अतः पुस्तक प्रकाशन का कार्य स्थगित

पड़ा रहा। परन्तु येन केन प्रकारेण थोड़ी सी सामग्री ही प्रकाशित हो सकी शीघ्रता में। समयाभाव के कारण अन्य महत्वपूर्ण सामग्री भी नहीं छप सकी। फिर भी हमें सन्तोष है कि स्वामी जी के सीधे सरल सुबोध प्रवचनों में उनकी भाषा एवं शैली को यथावत् बनाये रखने में सफलता मिली है, जिसे पढ़कर निश्चित रूपेण पाठकों को आनन्दानुभूति होगी। सनातनी जनता के लिये यह प्रवचन कल्याणकारी होंगे ऐसा हमें विश्वास है। आशा है शीघ्रता से संकलित इस सामग्री से धार्मिक जनता धर्म लाभ उठायेगी तथा उपर्युक्त परिस्थितियों में सम्भावित न्यूनताओं के लिये क्षमा प्रदान करते हुए प्रकाशन को सूचित करने की कृपा करेंगे जिससे अगले संस्करण में उनका निराकरण हो सके।

फाल्गुन शुक्ला द्वितीया, संवत् २०४२ वि०
१५०, चैतन्यपुरम,
नौचन्दी ग्राउण्ड, मेरठ–२

विनीत :
कृष्ण प्रसाद शर्मा
संकलनकर्त्ता

विषय सूची

प्रकाशकीय

सुप्रसिद्ध तीर्थ शुकताल जहाँ परमहंस शिरोमणि श्री शुकदेव जी महाराज ने भारत सम्राट परीक्षित जी को श्री मद्भागवत का श्रवण कराया था वहाँ पर परमभागवत सन्त श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महराज ने श्री मद्भागवत सप्ताह के आयोजन का संकल्प किया जिसमें श्री मद्भागवत के प्रमुख वक्ता होंगे अनन्त श्री विभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज। ब्रह्मसत्र के इस अपूर्ण अवसर पर प्रकाशन ने विचार किया कि पूज्य पाद श्री स्वामी विष्णु आश्रम जी महाराज के पावन उपदेशों का एक संकलन यदि भक्त पाठकों को सुलभ कराया जा सके तो उपयुक्त होगा। धर्मसंघ मेरठ के प्रधान श्री पं० सूर्यभानु जी पाण्डेय से महाराज जी के कानपुर आदि के प्रवचनों की डायरी प्राप्त करके श्री शर्मा जी ने उसका रातोरात संकलन सम्पन्न किया और शीघ्रता में प्रकाशन कार्यारम्भ भी कर दिया गया। इधर मेरठ में कुछ साम्प्रदायिक वातावरण के कारण कर्फ्यू लगा रहा और प्रकाशनादि का कार्य भी स्थगित रहा। अत्यन्त शीघ्रता करने पर भी श्री मद्भागवत सप्ताह प्रारम्भ होने से पूर्व इसे प्रकाशित न किया जा सका। फिर भी जितनी भी सामग्री का उपयोग हो सका और जितनी सामग्री भी प्रकाशित हो सकी वह आपके हाथों में सौंपते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है, क्योंकि महाराज जी के प्रवचन से अमृतवर्षा होती है और प्रस्तुत 'अमृत वाणी' से निश्चित रूपेण भक्त भावुकों को आनन्दानुभूति होगी ऐसा हमें विश्वास है। त्रुटियों के लिये क्षमायाचनापूर्वक हम आशा करते हैं कि इसे पाठक अपनायेंगे तथा शीघ्र ही इसका द्वितीय परिवर्धित संस्करण आपके हाथों में होगा।

धर्मसंघ प्रकाशन
३८४, स्वामीपाड़ा, मेरठ–२

निवेदक :
श्यामसुन्दर वाजपेयी
(अध्यक्ष)

धर्मसंघ प्रकाशन, मेरठ

उद्देश्य—सनातन धर्म एवं संघ के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सत्साहित्य प्रकाशन

सदस्यता
- संरक्षक सदस्य १००० या अधिक देने वाले
- सम्मानित सदस्य ५०० " "
- सहायक सदस्य २५० " "
- साधारण सदस्य २०० " "

प्रकाशन :

(१) **'जगद्गुरूगौरव'** ब्रह्मलीन ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरू शंकराचार्य श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज स्मृति-ग्रन्थ बड़ा साइज पृष्ठ १००० (द्वितीय संस्करण) मू० ७५)

(२) **'करपात्री एक अध्ययन'** ब्रह्मलीन धर्म-सम्राट् पूज्य स्वामी करपात्री जी महाराज के विचार दर्शन पर आधारित ग्रन्थ। मू० २०)

(३) **'परमहंसी त्रिपथगा'** ब्रह्मलीन श्री मत्परमहंस स्वामी श्री करपात्री जी, ब्रह्मलीन श्री मत्परमहंस स्वामी श्री कृष्ण बोधाश्रम जी एवं द्वारका पीठ के जगद्गुरू शंकराचार्य श्री मत्परमहंस स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी के पावन उपदेशों का संकलन। मू० ५)

(४) **'पिबत भागवतं रसमालयम्'** धर्म-सम्राट् यति चक्रचूड़ामणि अभिनवशंकर श्री स्वामी करपात्री महाराज के अन्तिम ४ प्रवचन। मू० ५)

(५) **'हमारी शासकीय परम्पराएँ'** मनु, याज्ञवल्क्य, शुक्राचार्य, चाणक्य, कामन्दक, सोमदेव सूरी तथा श्री स्वामी करपात्री जी के राजनीतिपरक विचारों पर सुन्दर व मननीय सामग्री—लेखक कालीचरण पौराणिक। मू० ८)

(६) **'अभिनवशंकर श्री स्वामी करपात्री जी'** धर्म-सम्राट् का भव्य स्मृति ग्रन्थ (प्रेस में है)

(७) **'श्री स्वामी करपात्री चित्रावली'** सम्पूर्ण रंगीन बड़े आकार वाले ३२ भव्य चित्रों सहित सुन्दर संग्रहणीय एलबम। मू० ३०)
चित्रावली का मूल्य सदस्यों से भी लिया जायेगा।

उपर्युक्त सभी प्रकाशन सदस्यों को निःशुल्क प्राप्त होते हैं। अतः सदस्य बनकर धर्म लाभ उठायें और परोपकार के भागी बनें।

निवेदक :
श्याम सुन्दर वाजपेयी
(अध्यक्ष)

॥ श्रीहरिः ॥

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहंवन्दे परमानन्दमाधवम् ॥
करारविन्देनपदारविन्दं मुखारविन्देविनिवेशयन्तम् ।
वटस्यपत्रस्य पुटेशयानं बालंमुकुन्दं मनसास्मरामि ॥
वंशीविभूषित करान् नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परम् किमपितत्वमहम्नजाने ॥

॥ भगवद्दर्शन ॥

जब आप भगवान के दर्शन कर लेते हैं, उसे पा लेते हैं, उस समय आप निर्भय हो जाते हैं, निर्लोभ हो जाते है। परीक्षित जब अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र के तेज से उत्तरा के गर्भ में ही जलने लगा तब उसने उन ज्योतिर्मय पुरुष श्री भगवान को देखा जिन्होंने अपनी गदा से उस ब्रह्म तेज को शान्त करके परीक्षित की गर्भ में रक्षा की। उसने गर्भ में ही उन्हें देखा—'ददर्श पुरुषं कञ्चिद्दह्यमानोऽस्त्र-तेज-सा। अनन्तर जब परिक्षित का जन्म हुआ तो बाहर आकर उसी ज्योतिपुरुष के दर्शन की इच्छा करने लगा और उसका स्मरण करता हुआ लोगों में उसी की परीक्षा करता रहता था कि जिसने गर्भ में रक्षा की थी, इनमें से वह कौन सा है ? वह बालक उत्पन्न होते ही उन प्रभु का ईक्षण करने लगा 'परितः ईक्षणात्—परीक्षित्' इस परीक्षण के कारण ही उनका नाम परीक्षित पड़ गया।

जब भगवान देवकी के गर्भ से कारागार में उत्पन्न हुए, तो पहले तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ परन्तु फिर आनन्द से उनकी आँखें खिल गईं, उनका रोम-रोम पुलकित हो गया और जब उनको यह निश्चय हो गया कि यह तो साक्षात परपुरुष परमात्मा ही है तब उनका सम्पूर्ण भय जाता रहा और निर्भय होकर अपनी बुद्धि को स्थिर करकेवसुदेव जी ने भगवान के श्री चरणों में अपना शिर झुका दिया और हाथ जोड़ कर स्तुति करने लगे। देखो यह जो हम शिर झुकाते हैं उसका अभिप्राय यह है कि प्रभु आप जो कहेंगे हम वही करेंगे—और जो हम हाथ जोड़ते हैं —उसका मतलब है कि प्रभु ये हाथ भी आपके ही हैं आप जो आज्ञा देंगे हम वही करेंगे। वसुदेव जी ने शिर झुकाकर हाथ जोड़ कर कहा प्रभु ! आप प्रकृति से परे साक्षात् पुरुषोत्तम हो आप केवल अनुभव और आनन्दस्वरूप हो आप सब बुद्धियों के साक्षी रूप हैं।

विदितोऽसि भवान् साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः ।
केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक् ॥

देखो मन की वृत्ति दो प्रकार की बतायी गयी हैं एक सामान्य दूसरी विशेष। जैसे हमें दुर्गा पाठ का खूब अभ्यास है तो हम अभ्यासवश कभी-कभी दुर्गा सप्तशती का पाठ सामान्य वृत्ति वश करते रहते हैं परन्तु हम अनुभव करते हैं कि हम किसी विशेष वृत्ति के वश किसी अन्य कार्य में निरत भी हो जाते हैं और हमें यह भी पता नहीं चलता कि पाठ क्रम यथावत चलता रहा। जिसकी आदत पड़ी हो अभ्यास हो वह सामान्य वृत्ति और जिसके लिये विशेष रूप से प्रयत्नपूर्वक ध्यान किया जाय वह विशेष वृत्ति बतायी गयी है।

देखो जब आप पूजा में बैठोगे तो कुछ न कुछ दीखेगा परन्तु जब अन्य कुछ भी दिखाई न देकर केवल वही दीखे जिसका पूजन-ध्यान कर रहे हो तो मन की यह विशेष वृत्ति बनाकर प्रभुपादारविन्द में समर्पण भावना से स्तुति करो। शरीर, मन, बुद्धि से पूर्णरूपेण आत्म निवेदनपूर्वक सर्वस्व समर्पण करो यही भक्ति है।

यह जीव जिस प्रकृति रूपी रस्सी से बन्धा है उसकी तीन लड़ हैं सत, रज, तम। जो इन तीनों गुणों से परे है प्रकृति के उस प्रवर्तक को वसुदेव जी ने देखा। जो त्रिगुणातीत वही तो पूर्णतम परात्पर प्रभु है। देखो ! अनुभाव्य, अनुभविता, अनुभव, ज्ञात, ज्ञेय, ज्ञान,

भोक्ता, भोग्य और आनन्द—यह तीन पृथक-पृथक हैं। इनमें से प्रथम दो को हटा दो तो तीसरा जो शेष रहता है वही सत, चिद, आनन्द रूप भगवान है।

कहा गया है कि 'देह देहि विभागोऽयं ईश्वरेनहिविद्यते।'—जिसका मुर्दा न जलाया जाय, जो हाड़, मास, चाम का पुतला नहीं है—वह ईश्वर है। न उसका शरीर अलग से है और न आत्मा पृथक से है। उनमें कोई भेद नहीं है। कोई जातीय रंग, लिङ्ग, गोत्र, प्रवरादि भी उनका नहीं है, कोई ब्राह्मणादि बर्ण, स्थावर-जंगमादि वृक्ष पशु आदि योनियाँ भी उनकी नहीं है। वह हाथ, पैर, शरीर से भिन्न है—'एकमेवाद्वितीयम्' है। वह सजातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित अद्वितीय तत्त्व है, उनमें कोई एक भी भेद नहीं है, उनके हाथ, पैर, मुख सब कुछ सच्चिदानन्द रूप ही है। इसे इस प्रकार भी समझ लो कि जैसे आपने एक खांड को बनी चिड़िया हाथ में ली तो जब आपने स्पर्श किया तो खांड का ही तो स्पर्श किया परन्तु जब एक बच्चे के द्वारा वह चिड़िया ली जायेगी तो वह कहेगा कि वह तो चिड़िया की चोंच, पंख, पैर आदि का स्पर्श कर रहा है। समुद्र का जल और लहरें एक ही हैं। लहरें ही जल है; जल ही लहरे हैं, सब कुछ वही परम प्रभु है जो सर्वत्र व्याप्त है, अणु-अणु में समाया है, सबका सृष्टा है, सबका दृष्टा है। वह हमारे आपके शरीरों को ही नहीं देखता अपितु हमारे मन के संकल्पों को भी प्रतिक्षण देखते हैं, आप अपने संकल्पों को उनसे छिपा नहीं सकते। अरे! अपनी आत्मा से ही आप अपने संकल्पों, विचारों, कर्मों क्रियाकलापों को नहीं छिपा सकते, वह सब जानती है सब देखती है। जब जब भी जो-जो भी अच्छे या बुरे भाव हमारे आपके मन में आते हैं वह सर्वदृष्टा होकर सब कुछ देख लेते हैं। यह बात अलग है कि आप को ज्ञात नहीं होता ऐसा—परन्तु कहा गया है कि —'चीटी के चरनन नूपुर बाजे ताको सुनत गोसांई।' अतः प्रतिक्षण उस परम प्रभु का स्मरण, चिंतन करते रहना चाहिए, जिसे परीक्षित ने गर्भ में देखा और महाराज वसुदेव जी ने कारागार में देखा। उसी परमानन्द कन्द भगवान के श्री चरणों में अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए नित्य बोला करो—श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव।

॥ परमात्मतत्त्व ॥

जब वसुदेव जी कारागार में भगवान श्री कृष्ण की स्तुति कर रहे थे तो भगवान ने हंस कर कहा मेरो प्रशंसा क्यों कर रहे हो? मैं तो देवकी माता के जठर से उत्पन्न हुआ हूँ। वसुदेव बोले भगवन् आप का तो विश्व में प्रवेश नहीं बन सकता, फिर देवकी के गर्भ में प्रविष्ट होने की तो बात ही क्या है? प्रभो! आप सृष्टि के आदि में अपनी प्रकृति से इस त्रिगणात्मक जगत की सृष्टि करते हैं, फिर उसमें प्रविष्ट न होने पर भी प्रविष्ट से जान पड़ते हैं। आप वास्तव में सच्चिदानन्दरूप हो, केवल माया से आप गर्भ में आये से जान पड़ते हो—पर हो नहीं। प्रत्येक वस्तु प्रकृति के तीन गुणों से ही युक्त है परन्तु इनको कोई देख नहीं सकता हाँ! इनके कार्यों से अनुमान ही लगाया जा सकता है।

जब तक महत्तत्वादि कारण-तत्त्व अलग-अलग रहते है, उनकी शक्ति भी अलग-अलग रहती है। परन्तु जब वे इन्द्रियादि सोलह विकारों के साथ मिलते हैं तो इस ब्रह्माण्ड की रचना करते हैं और इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करके इसी में प्रविष्ट से जान पड़ते हैं पर वास्तव में वह किसी पदार्थ में प्रवेश नहीं करते क्योंकि वह तो उनसे बनी हुई उस वस्तु में पहले से ही अनुस्यूत है विद्यमान है अतः कहीं बाहर से प्रवेश बनता ही नहीं। वह परमात्मा इन्द्रियों का विषय ही नहीं है। तत्तत इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों को तो ग्रहण कर लेती हैं, परन्तु वहीं पर जो आप विद्यमान है उन्हें यह इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं करती—

"एवं भवान् बुद्धयनुमेय लक्षणै-
ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः।
अनावृतत्वाद् बहिरन्तरं न ते।
सर्वस्य सर्वात्मनि आत्मवस्तुतः॥"

आप सब कुछ हैं, सर्वान्तर्यामी हैं, परमार्थ सत्य हैं, आत्मस्वरूप हैं – इन गुणों का आवरण आपको ढक नहीं सकता। फिर आपमें न बाहर है न भीतर तो फिर किसमें प्रवेश करेंगे आप? बस आप तो प्रवेश न करने पर भी प्रविष्ट हुए से दीखते हैं।

"सात्विकैः पुण्य निष्पत्तिः पापोत्पत्तिश्च राजसैः।
तामसैर्नोभयं किन्तु वृथायुः क्षपणं भवेत् ॥"

सात्विक गुणयुक्त कर्म पुण्य होते हैं, रजोगुण से पाप बनते हैं, क्रोध आदि की उत्पत्ति होती है। तमोगुण से आलस्य भ्रान्ति उत्पन्न होती है यह वृथा है इनमें न पाप है न पुण्य। अब आप इन कर्मों से अनुमान मात्र ही लगा सकते हो कि यह किस प्रकार के कर्म हैं। परन्तु ज्ञान, चैतन्य, आनन्द और सत्ता तो सर्वत्र विद्यमान हैं। पशु पक्षी, मानव, दानव, सबमें न्यूनाधिक यह व्याप्त है। तो जो पूर्व ही सर्वत्र बिराजता है, व्याप्त है उसने कहीं गर्भ आदि में बाहर से प्रवेश किया यह बात बनती ही नहीं। ऐसा तो अज्ञानी व्यक्ति ही कहते हैं कि आप ने पक्षी के घोसले में प्रवेश के समान गर्भ में प्रवेश किया वास्तव में यह बात है नहीं—आप तो वहाँ सदा-सर्वदा, पहले से ही विद्यमान थे।

बात यह है कि जैसे केवल मिट्टी से तुम दीवार नहीं बना सकते उसमें पानी इत्यादि मिलाना पड़ेगा। इसी प्रकार समस्त विकृत-अविकृत भावों से परस्पर मिलकर ही यह विश्व प्रपञ्च बनता है। एक बुद्धिमान व्यक्ति रुई, तेल, आग, दीपक लेकर ज्योति जला कर प्रकाश कर देता है और अन्धकार को दूर भगा देता है। जलती लकड़ी एकाकी अलग से रख दो तो धुवाँ देती है परन्तु चूल्हे में कई लकड़ी मिलाकर रखने से अग्नि बनकर आप का भोजन पका देती है। परन्तु इनमें वह शक्ति तो पहले से ही व्याप्त है, मौजूद है। भगवान ने प्रश्न किया कि जब मैं सब कार्य-कारण में रहता हूँ—जैसे कारण रूप तन्तु ही कार्य रूप वस्त्र में विद्यमान है—तो फिर जैसे तन्तु का कार्य रूप वस्त्र दिखाई देता है, वैसे ही विश्व के कार्यों के निहारते समय मैं उस अखिल विश्व का कारण रूप होने से क्यों नहीं दिखाई देता? इस पर कहा कि प्रभु आप तो सब जगह व्यापक

हो, परन्तु बुद्धि से जिनका अनुमान होता है वे तो इन्द्रियाँ हैं उनमें आपको ग्रहण करने की शक्ति नहीं है। हम तो अपनी बुद्धि से अनुमान मात्र करते हैं कान तो दीखता है पर उनमें सुनने की जो शक्ति है वह श्रवणेन्द्रिय –उस इन्द्रिय को देखा है किसी ने? इसी प्रकार अन्य भी इन्द्रियाँ ही हैं जिन्हें हम देख नहीं सकते। बिना कारण के क्रिया नहीं होती। रूप का ज्ञान किससे हुआ? तो आप अनुमान करते हैं कि नेत्र इन्द्रिय है; शब्द का ज्ञान होता है कर्णेन्द्रिय से, गन्ध का ज्ञान नासिकेन्द्रिय से, स्पर्श ज्ञान होता है त्वगिन्द्रिय से—परन्तु उनका केवल अनुमान ही होता है। उनके जो विषय हैं उनके साथ आप रहते हो प्रभु! पर आप 'न गृह्यते'—उनसे आप का ग्रहण नहीं होता, आप दिखाई नहीं देते। परन्तु इसका यह अभिप्राय तो कदापि नहीं है कि हम उसे देख सकते हैं। आँख से देखकर रूप का ज्ञान होता है। देखो गर्म तवा रखा है तुम उसे छू लो तो वह गर्म प्रतीत होगा। फिर कोई कहे कि अरे! तुम्हें दीखता नहीं था परन्तु इसमें जो व्याप्त गर्मी थी अग्नि थी वह नहीं दीखती। जब हम तवे की गर्मी को भी नहीं देख सकते फिर हे परम सूक्ष्म परमात्व तत्त्व स्वरूप परम-ब्रह्म परमात्मा, आप हमें कैसे दीखेंगे? इसका यह अभिप्राय नहीं कि आप वहाँ नहीं हैं पर इन आँखों में इतनी शक्ति-सामर्थ्य नहीं है जो तुम्हें देख सके।

वसुदेव जी ने प्रभु की स्तुति करते हुए कहा कि हे प्रभु आप अपरिच्छिन्न हैं, अनावृत्त हैं, आप परिधि में आने वाले नहीं हैं आप भीतर हैं, आप बाहर हैं फिर भी आप में न भीतर है और न बाहर है, आप सबके अन्तर्यामी हैं, आप परमार्थ सत्य हैं आत्मस्वरूप हैं।

"अनावृत्तत्वाद बहिरन्तरं न ते।
सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुतः ॥"

प्रभु आप सर्वस्व हैं, सर्वत्र हैं। मिट्टी के घड़े में मिट्टी भर दो और कहो कि घड़े में मिट्टी है तो तत्वज्ञ कहेगा अरे! यह तो मिट्टी बाहर भी है, भीतर भी मिट्टी भर रखी है, मिट्टी तो अन्तर्बाह्य

सर्वत्र ही हैं। अतः आप (प्रभु) ही सबके प्रकाश करने वाले हो।

यह सम्पूर्ण विश्व भगवान के एक देश में चमक रहा है। और यह इन्द्रियाँ अपने-अपने मतलब की चीज ही ग्रहण करती हैं, ये वस्तु के गुणों का ही ग्रहण करती हैं वस्तु का नहीं। तुम कहते हो कि बाहर से तो हम सब जो देखते हैं वह उनका स्वरूप मात्र है, वह रूप का गुणाभास है। वस्तु का साक्षात्कार इन्द्रिय से नहीं होता।

"य अ त्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति,
व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतोऽबुधः ।
विनानुवादं न च तन्मनोषितं,
सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत पुमान् ।।"

यह सब दृश्य प्रपंच कल्पित है, जो इस संसार को सत्य समझता है वह अविवेकी है, मूर्ख है। जो आत्मा से भिन्न करके जगत को सच्चा समझे वह अबोध है, अज्ञानी है। तुम स्वयं अपने आप इसका अनुभव कर सकते हो कि तुम कौन हो? और बिना विचारे इस असार संसार में राग कर लोगे तो गये काम से। जरा विचार करो कि मधुर शर्करा (चीनी) का कारण क्या है? आप कहेंगे कि गन्ना। अरे इसमें भी रस, पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाशादि क्रमशः कारण है बिना इनके यह नहीं बन सकती; इसी प्रकार पंचकर्मेन्द्रियां, पंच-ज्ञानेन्द्रियां, पंचतन्मात्राएं, अहंकार, महत्तत्व, अव्यक्ततत्व और इन सबका परम कारण 'ब्रह्म' है—यह कारण परम्परा की नसैनी (सीढ़ी) है इस नसैनी से उतरोगे तो सीधे परमकारण (मूल) ब्रह्म में पहुँच जाओगे। बुद्धिमान पुरुषों ने जिसे माया मात्र कल्पित जानकर छोड़ दिया है —उसी मिथ्या प्रपंच को ग्रहण करने वाला मूर्ख है तत्वज्ञ बुद्धिमान को चाहिए कि इस आत्मनात्मतत्त्व पर निरन्तर विचार करते हुए परमात्वतत्त्व की प्राप्ति कर ले।

॥ पतन का कारण ॥

प्रश्न है कि पतन का क्या कारण है! तो भाई! व्यक्ति, समाज, राष्ट्र के पतन के तीन प्रमुख कारण बताये गये हैं :—(१) विहित कर्मों का आचरण न करना। (२) निन्दित-अविहित कर्मों का आचरण करना तथा (३) इन्द्रियों की विषयों में आसक्ति।

'अकुर्वन विहितं कर्म निन्दितं च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु नरः पतनमृच्छति ॥'

शास्त्र कहता है कि बिना कर्म किये प्राणी रह नहीं सकता। यदि शास्त्र विहित कर्म न करोगे तो स्वाभाविक है कि फिर निषिद्ध कर्मों को ही करोगे। गीता में भी भगवान ने कहा है कि :—

'नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणैः ॥'

अतएव पतन से बचने के लिये निन्दित कर्मों से बचना एवं अनिन्दित कर्मों का आचरण करना ही होगा।

'चित्ते भ्रान्तिर्या च ते मद्यपानात् ।
भान्तेचित्ते पापचर्यामुपैति ॥'

आजकल सुरापान की ओर विशेष-प्रवृत्ति दीख रही है। यह बड़ा निन्दित कर्म है—'सुरा न पातव्या।' इसके पान करने से चित्त में भ्रांति हो जाती है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अतः मदिरा-पान महान पतन का कारण है, यही पाप का मूल है। देखो! एक चारों वेदों का ज्ञाता महान पण्डित है, विद्वान् है, पर आचरण भ्रष्ट है, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता है, सुरापान करता है और एक मूर्ख है, अविद्वान् है परन्तु ब्रह्मचर्य व्रत का सम्यक् पालन करता है

सुरापान नहीं करता, सदाचारी है—तो इन दोनों में पहले व्यक्ति की पण्डित होते हुए भी सद्गति नहीं हो सकती जबकि सदाचारी मूर्ख सद्गति को प्राप्त करेगा। संसार के जितने भी पाप हैं वे सब मिलकर भी मदिरापान जनित पाप की तुलना नहीं कर सकते, मदिरापान महानपातक है इससे यत्नपूर्वक सदा बचना चाहिए अन्यथा पतन निश्चित है।

'एकतश्चतुरोवेदाः ब्रह्मचर्यमथैकतः ।
एकतः सर्वपापानि मद्यपानं तथैकतः ॥'

भारतीय संस्कृति में 'मातृवत परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्' को बड़ा उच्च स्थान प्राप्त है। यह सदाचार का मूल है। पर स्त्री एवं परधन से परहेज करने पर हमारे यहाँ बड़ा बल दिया है शास्त्रों ने। दूसरों की स्त्रियाँ एवं दूसरों के धन की ओर आसक्ति घोर पतन का कारण बनते हैं।

मनुष्य विभिन्न विषयों का गुलाम बन जाता है जो पतन का कारण बनते हैं। इस संसार की कौन बात है यदि स्वर्ग में भी आप जायेंगे तो विषयोपभोग करने के अनन्तर आप को पुनः वहाँ से वापिस आना होगा। विषयों के भोगने से इनकी आसक्ति अनुरक्ति से पतन ही पतन निश्चित है। यह मनुष्य जन्म मोक्ष का द्वार बताया है; अतएव मोक्ष-प्राप्ति के लिए सावधानीपूर्वक सतत प्रयत्न अवश्य करना चाहिए। एक बार एक राजा घोड़े पर चढ़कर जंगल में गया। उसके साथ धनुष-बाण आदि भी थे। आखेट करता-करता घोर-गहन वन में निकल गया वहाँ उसे प्यास लगी, भूख ने सताया। चारों ओर देखने पर उसे एक ओर दूर कहीं धुवाँ उठता दिखाई दिया। राजा ने वहाँ जाकर देखा तो पाया कि कुछ व्यक्ति वहाँ विद्यमान हैं। उन्होंने राजा की आकृति देखकर उसे पहचान लिया कि यह राजा है। उन्होंने आदर सत्कार सहित राजा को ले जाकर एक वृक्ष की छाँह में बैठाया, पीने को ठण्डा पानी तथा खाने को कुछ जंगली मधुर फल-कन्द-मूल आदि दिये। राजा ने विश्राम किया और वापिस राजधानी में लौट आया। महलों में जाकर राजा ने आदेश दिया कि उन वनवासियों को चन्दन का बगीचा दे दिया जाय जिससे वह लोग

चन्दन की मूल्यवान लकड़ी से लाभान्वित हो जायें। इस प्रकार प्रसन्न होकर राजा ने उन वनवासियों को चन्दन का बाग दे दिया। उन मूर्खों ने चन्दन के वृक्षों से भी अन्य साधारण लकड़ी की भाँति जला कर कोयला बनाना प्रारम्भ कर दिया। जब राजा को पता चला इस बात का कि वह चन्दन की लकड़ी का लाभ न उठाकर उसे जलाकर कोयला तैयार कर रहे हैं तो उसने कहा कि वे तो वज्रमूर्ख हैं। सज्जनों ! भगवान ने बड़ी कृपा करके आप को हमको यह मानव शरीर दिया है कि इसके माध्यम से वह उसे (परब्रह्म को) प्राप्त करें परन्तु हम विषयाग्नि में फूँक कर जलाकर इसके कोयला बना रहे हैं जब भगवान् देखते हैं कि यह तो उसी प्रकार मूर्खता का कार्य कर रहे हैं दुर्लभ मानव शरीर पाकर भी तब वे कहते हैं कि तुम इसके पात्र नहीं हो, अतः अब जाओ पशु-पक्षी-वृक्षादि योनियों में जन्म लो और इस प्रकार मानव स्वयं ही अपने पतन का कारण बनता है। प्रभु तो करुणा करके उसे मनुष्य जीवन प्रदान करते हैं परन्तु यह मूर्ख मानव चन्दनवन रूपी शरीर को पाकर भी परमार्थ साधन के स्थान पर विषयाग्नि में जला-जला कर इन्द्रिय तर्पण में लगा रहता है और इस प्रकार स्वयमेव पतन के गर्त में गिरता है।

यदि आप अपना पतन नहीं चाहते तो विषयों से बचो। इससे बचने के तीन प्रमुख उपाय बताये गये हैं (१) दोष दर्शन (२) सन्निधित्याग (३) सत्संग। काम क्रोधादि मद-लोभादि विषयों में दोष-दर्शन पूर्वक इनके प्रति अनासक्ति। दूसरे ऐसे पुरुषों का संग मत करो जिनके साथ बैठने से कुबुद्धि उत्पन्न हो, आपके भजन में विघ्न-बाधा पड़े—और इतने पर भी यदि काम न बनता दीखे तो बस तीसरा उपाय है सत्संग। साधु-सज्जन पुरुषों का संग करो—इस प्रकार शनैः-शनै मन शुद्ध होगा, नियन्त्रित होगा और पतन से बचकर मनुष्य की उन्नति होगी। मन में सन्तुष्टि आयेगी। सन्तोष और साधुसंग विषयों से बचने के अमोघ उपाय बताये गये हैं। जो कुछ भी मिल जाये प्रारब्ध से उसमें ही सन्तोष मानना और सज्जन सदाचारी साधु पुरुषों सन्तों का संग करना—इन दोनों के पालन अनुकरण से मनुष्य पतन से बच सकता है। आज हम देखते हैं कि इस प्रकार भाग्य से प्राप्त साम्रग्री को पाकर कोई भी व्यक्ति सन्तुष्ट

नहीं दीखता। सब निन्यानवें के फेर में पड़े हुए हैं। यही कारण है कि सब असन्तुष्ट हैं—अब बताओ फिर कि पतन से कैसे बचोगे ? तो शास्त्रों ने कहा कि 'सन्तोषः नन्दनवनः' यह सन्तोष नन्दन वन के समान है, क्रोध ही शत्रु है, तृष्णा वैतरिणी नदी के समान दुर्लंघ्य कष्ट कारी है—

'क्रोध एव महान शत्रु तृष्णा वैतरणी नदी।
सन्तोषो नन्दन वनं तुष्टिरेव हि काम धुक ॥'

अतः पतन से बचने की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को इस संतोष रूपी परमधन का सहारा लेना चाहिये।

भगवान आद्य श्री शङ्कराचार्य जी महाराज कहते हैं कि तृष्णा में फंसे व्यक्ति ही वास्तव में सबसे अधिक दरिद्री हैं और संतोषी व्यक्ति ही सबसे बड़ा धनवान है। उस व्यक्ति के लिये जिसने पैर में चमड़े का जूता पहन रखा है, सारी धरती ही चाम से मढी हुई है।

उपानद् गूढपादस्य सर्वा चर्मावृतेव भूः ।
सर्वा सम्पत्तयः तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम् ॥

एक राजा के पैर में कांटा चुभ गया उसने तुरन्त आदेश दिया कि सम्पूर्ण पृथ्वी चमड़े से मढ दी जाय, ढक दी जाय फिर कांटा नहीं चुभ सकेगा किसी के भी। राजाज्ञानुसार जब चमड़े से पृथ्वी को ढकने का कार्यारम्भ हुआ तो बड़ी कठिनाई पड़ी। अन्त में मंत्रियों ने जाकर कहा महाराज इससे तो न खेती होगी न कुछ उपज हो सकेगी। सभी कार्य बंद हो जायेंगे तो बड़ी हानि और अन्ततोगत्वा नाश को प्राप्त हो जायेंगे सब। हमारा एक प्रस्ताव है कि प्रजा के सब लोगों को चमड़े के जूते बना दिये जायें कोई धरती पर बिना जूता पहिने न चले—इस प्रकार जूता पहन कर चलने वाले के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही चमड़े से मढी हुई हो जायेगी। इसी प्रकार वह व्यक्ति जो है जिसने सन्तोष रूपी धन धारण कर रखा है, फिर उसके लिए सब ओर सुख ही सुख है कहा गया है कि 'शान्ति तुल्यं तपो-नास्ति न सन्तोषात्परंसुखम्।'

एक महात्मा थे वह नगर में आये। सब उनके दर्शन के लिए आए। एक धनवान व्यक्ति चांदी के थाल में अशरफी रखकर भेंट

करने आया तो महात्मा ने कहा कि इसे किसी दरिद्री व्यक्ति को दे दो। उस धनवान व्यक्ति ने सोचा कि इस महात्मा से अधिक दरिद्री निर्धन और कौन होगा इनके पास तो एक लंगोटी मात्र ही है। इसी बीच एक राजा भी वहां दर्शन करने आया। महात्मा बोले—यह थाल अशरफी इस राजा को दे दो। उसने महात्मा का निर्देश मानकर ऐसा ही किया, राजा के मन्त्री ने तुरन्त उसे ग्रहण कर लिया। तो देखो! उसे (राजा को) महात्मा की तरह सन्तोष नहीं था। वही दरिद्री था।

दो प्रकार की परिस्थितियां होती हैं—अनुकूलता और प्रतिकूलता जब दुःख आये प्रतिकूल परिस्थितियां उत्पन्न हों तो दुःख का अनुभव तो करो किन्तु उद्विग्न न हों, परेशान न हो, अविचलित भाव से धैर्यपूर्वक उसे सहन करो और विचार करो कि यह जो दुःख आया है उसमें भगवनान की सम्मति अवश्य है ; उस दुःख को यह सोचकर सहन करो कि वह परमात्मा अकारण बिना विचारे कुछ भी नहीं करता; जो कुछ प्रतिकूलता है वह उसी की सम्मति से है, वह सब जानता है इस प्रकार भगवद्भक्त प्रतिकूल को भी सहर्ष सहन कर लेता है। एक जमीदार का बाग था उसने ककड़ी लगाई। छोटी-छोटी ककड़ियाँ आँयी। उस जमीदार ने वह ककड़ियाँ मित्रों में बाँट दी और एक स्वयं रख ली। अपनी ककड़ी में से आधी उसने माली-नौकर को दे दी कि लो यह तुम्हारी है, नौकर ने उसे खाया तो वह ककड़ी कड़वी थी परन्तु वह खा गया। जब जमींदार ने उस आधी ककड़ी को खाया तो वह कड़वी थी उसने तुरन्त थूक दिया और अपनी आधी ककड़ी भी नहीं खाई। नौकर से पूछा कि तुमने कड़वी होने पर भी ककड़ी क्यों खा ली ? नौकर का उत्तर था कि वह ककड़ी उसके मालिक ने दी थी और उसको उसने ग्रहण कर लिया था; अतएव स्वामी की दी हुई वस्तु को उनके आदेशानुसार खाना उसका कर्तव्य था। जो आप को प्रभु कृपा से प्राप्त हुआ है उसे प्रसन्न मन से ग्रहण करो, उसमें सन्तुष्ट रहो। और यह होगा साधु-सज्जनों के सत्संग से—साधु संग अमोघ है, अगम्य है, दुर्लभ है। प्रथम तो सच्चे साधुओं का मिलना कठिन, उनकी सत्संगति कठिन है यदि कभी भाग्य से

मिल भी जाएं तो उनसे कल्याण प्राप्ति रूपी लाभ प्राप्त करना और भी कठिन है—'महत्संगस्तु-दुर्लभो अगम्यो अमोघश्च:।' इसके लिए पहले कुसंग का परित्याग करो। जैसे एक छोटी तरंग भी समुद्र जल से मिलकर समुद्र बन जाती है ऐसे ही थोड़ा सा कुसंग भी सुमति को धो नष्ट कर डालता है; अतः कुसंगति से सावधानीपूर्वक बचना चाहिए तभी पतन से बच सकोगे।

'दुःसंगः सर्वथैव त्याज्यः

तरङ्गायितापिमेसङ्गात्समुद्रायन्ति'।

अत: प्राणी को चाहिए कि वह सावधानी पूर्वक संयमित जीवन बिताते हुए भगवान की शरणागति ग्रहण कर लें तो निश्चित रूप से पतन से बचा जा सकता है। ●●

विषयासक्ति ही विष है

मनुष्य को सदा सद् असद वस्तु, आत्म अनात्म वस्तु विवेक करते रहना चाहिए। सांसारिक विषयासक्ति को छोड़ कर अपना कल्याण पथ प्रशस्त कर लेना चाहिए। कोई महात्मा किसी का कल्याण करना चाहते हैं अथवा किसी का कल्याण जब किन्हीं महा-पुरुष द्वारा होना होता है तो उसी प्रकार की परिस्थितियाँ बन जाती हैं और वह अनिवार्यतः घटित होता ही है। एक बार एक महात्मा भिक्षा लेने एक गृहस्थ के घर गये। उन्होंने सेठ को देखा कि वह बच्चों में खेल रहा था। महात्मा ने कहा कि सेठ तेरा पुण्य उदय हुआ है, अब तुम गंगा किनारे जाकर उन भगवान का भजन करो जिनकी कृपा से तुझे इस भौतिक सुख को प्राप्ति हुयी है। सेठ बोला ! अरे जैसा तू बाबा जी है वैसा ही सबको बनायेगा। अपनी भिक्षा ले और इधर-उधर की व्यर्थ की बातें न कर। महात्मा बोले सेठ वह दिन आयेगा जब चार आदमियों द्वारा गंगा पर ले जाये जाओगे फिर तुम स्वयं ही अपनी इच्छा से गंगा पर क्यों नहीं चले जाते ? सेठ सुन कर क्रोधित हो गया बोला—चले जाओ यहाँ से यहाँ कभी मत आना। महात्मा चले गये। कुछ दिन बाद गंगा का मेला आया सेठ नहा रहा था। महात्मा ने सेठ का वेश धारण करके उसका ताँगा लेकर घर वापिस पहुँच गया सेठ बनकर। स्नान करके सेठ ने ताँगा ढूंढा नहीं मिला। अन्ततोगत्वा सेठ घर पहुँचा और जैसे हो घर में प्रवेश करना चाहा तो पुत्रों ने ही रोक दिया और कहा अरे ! यह तो कोई बहुरुपिया है, हमारे पिता जी तो घर के भीतर विद्यमान हैं। उस सेठ ने राजा के यहाँ न्यायालय में फरियाद की। राजा ने दोनों को बुलाया दोनों ही सेठ होने की बात कहते रहे। मन्त्री और राजा दोनों ने कहा कि अच्छा हम उसके परिवार से पूछताछ करेंगे। वहाँ सेठ के घर जाकर जब पूछा कि यह मकान किसमें बनाया है इसने कितना धन

व्यय हुआ है तो नकली सेठ तुरंत बोला अरे महाराज हमने बनवाया है, हमारे हाथ का सब कराया हुआ है इसमें पूछना बताना ही क्या मुझे क्या किसी को हिसाब देना था मैं तो स्वयं इसका मालिक हूँ। परंतु असली सेठ बोला वह तो इस प्रकार बिना बही खाते देखे हुए कुछ भी नहीं बता सकता। खाते देखकर ही वह कुछ बता सकता है और तब ही सिद्ध करेगा कि वही असली सेठ है। अन्त में जो वास्तविक सेठ था वही निष्कासित कर दिया गया। खिन्न होकर वह सेठ गंगा तट पर गया और वहाँ जाकर गंगा की पूजा अर्चा आराधना करके अन्त में परम गति को प्राप्त हो गया, कल्याण को प्राप्त हुआ। इस प्रकार उस महात्मा को उस सेठ का कल्याण करना अभीष्ट था अतः उस सेठ का कल्याण किया।

मनुष्य को सार-असार, आत्म-अनात्म तत्व पर इस समस्या पर भली भांति विचार करना चाहिये, उसी को भगवान ने यह शक्ति सामर्थ्य प्रदान की है। यदि इस पर प्राणी विचार कर ले तो बस ग्रन्थि खुल गई। सुख रूपी वृक्ष का मूल विचार ही है योग वसिष्ठ में कहा है कि—

'अहो मोहस्य महात्म्यम् यदयं सर्व दुःखहा।
चिन्तामणिर्विचाराख्यो हृदिस्थः त्यज्यते जनैः॥'

सबके दुःख दूर करने वाला यह विचार रूपी चिन्तामणि सब दुःखों की निवृत्ति करने वाला है। यह सबके चित्त में बैठा हुआ है, परन्तु आश्चर्य है कि तो भी दुनिया दुखी है देखा—

"दुःखे दुःखाधिकान् पश्येत् सुखे पश्येद्सुखाधिकान्।
वृकाभ्यां हर्ष शोकाभ्यां आत्मानं नार्पयेत् वृथाः॥"

अतएव मनुष्य को चाहिए कि वह सदा आत्मनात्मक का विवेक करके परमार्थ पर विचार करता रहे। यदि आप दुःखी हैं तो अपने से अधिक दुःखी व्यक्ति की ओर देखकर विचार करो, विवेक पूर्ण चिन्तन से ही आप दुःख पर विजय पा सकते हैं। आप आत्मा को इन हर्ष-शोक रूपी दो भेड़ियों को नहीं सौंप दो। विवेक पूर्ण सह-विचार से मनुष्य सुख प्राप्त कर सकता है।

जरा विचार करो कि जब आप रहने के लिए किसी को घर देते हो तो वह उसे साफ करता है; इसी प्रकार यदि आप अपने

अन्तःकरण का निग्रह करके प्रभु को समर्पित कर दो तो वह प्रभु उसे भी स्वच्छ-निर्मल बना देगें। हाँ देखो। भगवान तो स्वयं कह रहे है कि—

'मन्मनाभवमद्भक्तो मद्याजीमाम् नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसिमे॥'

तू मुझ में ही अवलम्बन लगा, मेरी भक्ति कर, मेरा ही यजन, पूजन कर, मुझे प्रणाम कर ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त करेगा। और भी कहा है कि—

'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज;
अहंत्वा सर्व पापेभ्योमोक्षयिष्यामि माशुचः।'

तू सब प्रकार के विश्वप्रपंचों, गतिविधियों, कार्यकलापों का परित्याग करके उन सब कर्त्तव्यों, धर्म-कर्मों के प्रति आसक्ति हटाकर सम्पूर्ण धर्म-कर्मों के आश्रय को छोड़कर केवल मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा की अनन्यशरण ग्रहण कर, मैं तुझे समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा।

यह संसार के विषय विष के समान है और क्षमा, दया, आर्जव आदि अमृत के समान हैं। विष का शमन करने के लिये अमृत की अभिवृद्धि के लिये, मनुष्य को सदा सावधानी पूर्वक अनिन्दित कर्मों को करना चाहिये। इन विषयों का भोजन है पाप अतः आप लोग इन विषयों को खिलाने के लिए पाप मत करो। बरक्कत की कमायी करो, हक की रोटी खाओ, नेक कमाई करके खाओ, भले ही थोड़ा मिले परन्तु होना चाहिये धर्मपूर्वक, न्यायपूर्वक, ईमानदारी से, परिश्रम से कमाया हुआ। जब आप इस प्रकार नियन्त्रित नियमित जीवन यापन करोगे तब ही आप विषयों से बच सकते हैं।

एक राजा एक महात्मा की सेवा में गये और उनसे उपदेश देने की प्रार्थना की। महात्मा ने कहा है कि 'धर्मानुसार हक की रोटी खाओ'। राजा बोला मुझे तो उसमें कठिनाई अनुभव होती है यह कैसे होगा ? महात्मा बोले कि देखो तुम उस बुढ़िया से पूछो। राजा वृद्धा के पास गया उससे पूछा तो वृद्धा बोली उसने आज आधी रोटी

ही खाई है क्योंकि इस रोटी की आधी रोटी तो हक की है और आधी हक की नहीं है। राजा ने आश्चर्य पूर्वक पूछने पर वृद्धा ने बताया कि वह जब सूत कात रही थी तो बीच में ही अन्धकार हो गया और वह आधा ही सूतकात पायी; परन्तु इसी बीच एक बारात आ गयी यहाँ और वह आधासूत मैंने बारात की रोशनी में काता। अतएव मैं केवल आधी रोटी की ही अधिकारिणी हूँ शेष आधी की नहीं। और जीवन धारण करने के लिये केवल आधी रोटी जो मेरे हक की थी खायी है—इससे मेरे प्राणों की भी रक्षा हो गयी। राजा को महात्मा जी के उपदेश का स्मरण हुआ और वह उस वृद्धा से शिक्षा ग्रहण करके तत्वजिज्ञासा एवं मुक्ति के मार्ग पर अग्रसर हो गया।

इस प्रकार सात्विकता पूर्वक जीवन यापन से पुन:पुन: जन्म-मरण के चक्कर में नहीं पड़ना पड़ता। देखो ! सरलता मोक्ष का साधन है और कुटिलता मौत का घर है। मनुष्य जीवन को पाकर भी बस अधिक जानने की आवश्यकता नहीं है, बुद्धिमानी इसी में है कि भौतिक सुख विषय वासनादि रूपी विष का त्याग कर अमृत का पान करे। परन्तु मनुष्य यह जानते हुए भी कि विषय विष के समान हैं, तो भी पशुओं की भांति इन्हीं भोगों में फंसते हैं और अपने आपको इस विषयाग्नि में भूनते हैं, फूँकते हैं—क्यों ? तुम जानते हो कि यह विषय विरस हैं इनमें रस नहीं है, परन्तु बिना आत्माध्यास के रहने से इन विषयों में राग हो जाता है और मनुष्य पशुतुल्य बनकर जीवन बिताता है। भक्त कहता है कि ऐसा व्यक्ति जो कहता है कि सांसारिक विषय वस्तुएँ अनित्य हैं, क्षणभङ्गुर हैं और फिर भी उनका सेवन करता है, उस पापकर्मा बर्हिमुख व्यक्ति का मुख देखने में भी पाप लगता है। भगवान ऊधो से भी यही कहते हैं कि हे ऊधो। शरीर में अन्यथा बुद्धि रखना भ्रांति है, जैसे कोई लाल पीक को लालमणि रत्न समझ बैठे अथवा सीपी की चमक को चान्दी समझे तो भ्रम में ही तो रहेगा, अंत में पतन ही होगा।

'अनित्यमिति योवक्ते सेवते नित्यमेवतः,
बर्हिमुखस्य तस्यास्यं मा दर्शः महेश्वर।

इस देह में अभिमान हो जाने से रजोगुण हुआ तो फिर संकल्प-

विकल्प सांसारिक विषयों में होंगे ही। यद्यपि वह जानता भी है कि इसका परिणाम दुःख ही है, परंतु फिर भी उन्हीं को यथार्थ समझकर वास्तविक मानकर भ्रमवश भटकता है।

देखो। एक बात है कि मन स्वभावतः सतोगुणी है, रजोगुणी नहीं है। यह अंतःकरण तो स्वभावतः सात्विक ही है। इस पर जो रजोगुणादि की परत पड़ गयी है, उसे दूर करने की आवश्यकता है। इस अंतःकरण पर विजय प्राप्त कर लो; इन्द्रियरूपी घोड़ों पर नियंत्रण करके वश में कर लो तब तो मानव जीवन की सार्थकता है, अन्यथा यह शरीर रुपी जो अनमोल रथ मिला है मनुष्य को, यह अनियन्त्रित इन्द्रियरूपी घोड़े उसे गर्त में ही डाल देगें। अतः मानव को इस संसार में शीघ्रातिशीघ्र इन्द्रियों को विषयों से हटाकर इनको वश में करके, अंतःकरण को निर्मल बनाकर आत्मकल्याण कर लेना चाहिये। यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। □□
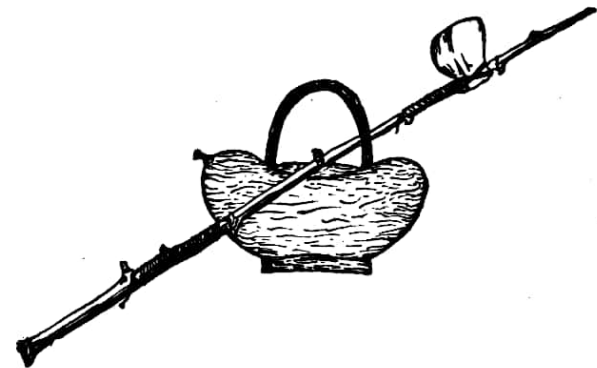
जितेन्द्रिय कौन ?

प्रश्न है कि जितेन्द्रिय कौन है ? जितेन्द्रिय किसे कहते हैं ? तो सज्जनो हम सामान्यतया कह सकते हैं कि सुनकर, देखकर, सूंघकर, छूकर और खाकर जिसको न हर्ष होता है न दुःख होता है और न ग्लानि होती है वह व्यक्ति जितेन्द्रिय है। यदि इनमें से एक इन्द्रिय भी वश में न हो और अन्य चाहे वश में हों भी तो भी प्राणी को जितेन्द्रिय नहीं कहा जा सकता। जैसे एक पात्र में केवल एक ही छिद्र हो जाय तो सारा जल वहाँ से बह जाता है, इसी प्रकार आपकी एक इन्द्रिय या छिद्र भी आपका पतन कर सकता है—'इन्द्रियाणां निरोधेन-रागदोषेन क्षरेण च'

जिस इन्द्रिय का भोग करोगे उसका ही कौशल बढ़ता है, बल बढ़ता है। इससे फिर प्राणी उन्हें जीत नहीं पाता। देखो ! निम्न-लिखित छह बातों का ध्यान रखो—

(१) 'अजिह्व' बन कर रहो ! क्या मतलब ? यही कि इस प्रकार से व्यवहार करो कि अपनी जिह्वा से किसी भी प्रकार के अन्न को भोजनादि की न प्रशंसा करो न उसके अस्वाद आदि की निन्दा करो। व्यर्थ के प्रसंग में पड़कर अनर्गल वार्त्तालाप न करो। थोड़ी, हितकर और सत्य मधुर वाणी बोलो—इसको कहते हैं—'अजिह्व'।

(२) 'षन्डक'—इन्द्रियों में शक्ति सामर्थ्य होने पर भी नपुन्सक की भांति रहो। युवतियों की ओर दृष्टि जाय तो उन्हें अपने बच्चों की तरह जानो अथवा साठ वर्ष की बुढ़िया की भांति उन्हें देखो। इस प्रकार 'षण्डक' बनकर कालयापन करे।

(३) 'पंगु'—पैरों के रहते उनमें सामर्थ्य रहते हुए भी व्यर्थ इधर उधर न घूमें। केवल प्रकृति के अनुसार उसी के वशीभूत होकर भिक्षा आदि के लिये ही दो चार मील तक घूमले-व्यर्थ भटकता न फिरे। इस प्रकार 'पंगु' सा बनकर रहे।

(४) 'अन्ध'—आँखें होते हुए भी अन्धों की तरह रहे, अर्थात् चलते हुए मार्ग में भी और बैठे हुए भी मात्र चार गज की दूरी तक ही आँख उठाकर देखे। इस प्रकार शरीर धर्म का निर्वाह मात्र करता रहे। संसार की वाह्य चमक-दमक से सर्वथा दृष्टि हटाते हुए अन्त-मुंखी वृत्ति बनाकर अन्धों की भांति रहे।

(५) 'बधिर'—कर्णेन्द्रियों में सुनने की शक्ति विद्यमान रहते हुए भी व्यर्थ की बातों को कान से न सुने। प्रशंसा, निन्दा, हित, अनहित, शोक, हर्ष युक्त सब प्रकार की वाणियों को सुनकर भी अनसुनी कर देता है जो वह बधिरवत रहता है।

(६) 'मुग्धश्च'—ऐसी स्थिति में रहना, जिसमें विषयों की सन्निधि तो है पर जागते हुए भी सोने की सी अवस्था में रहे; विषयों की ओर से इस प्रकार मुग्धावस्था में रहता हुआ आत्मचिन्तन निरत रहे।

इस प्रकार मनुष्य को चाहिये कि यह इन्द्रियों का निग्रह करे, वर्षा में छाता न लगावे। लू से बचने की चेष्टा न करे। जाड़ों की ठण्ड में भी निर्लेप भाव से शीतल वायु आदि को सहजभाव से सहन करे, धूप से बचने के भी छाते आदि का प्रयोग न करे। चाहे ऊपर से हिम वर्षा हो रही हो चाहे पसीना बह रहा हो। सबको सहज भाव से सहन करे। यह तप है—

'प्राणायामैदेहे दोषान् धारणाधिस्तुकिल्बिषान्'।

●●

शरणागति और परमपद प्राप्ति

मानव जीवन का चरम लक्ष्य है आत्मसाक्षात्कार। यदि मनुष्य शरीर पाकर भी आत्म तत्त्व का दर्शन नहीं किया तो यह जीवन व्यर्थ ही समझना चाहिये। देखो! आत्मा कर्म नहीं है, सबका अनुभव करने वाले का किससे अनुभव करोगे? जो कुछ भी दृश्यमान वस्तु है, सब मिथ्या है, परन्तु इन सबको बनाने वाले आप स्वयं हैं; क्या भगवान को इस जगत के बनाने में इस सम्पूर्ण विश्वप्रपंच की रचना करने में कुछ परिश्रम करना पड़ता है, प्रयत्न करना पड़ता है? नहीं, बिल्कुल नहीं। केवल संकल्पमात्र से ही वह इस सृष्टि की रचना कर देते हैं। वह परमात्मा निर्गुण, निरीह, चेष्टारहित और अविकारी है और यह सृष्टि आदि तो गुणों का कार्य है आपमें (प्रभु में) तो वह केवल आरोपित है। जैसे कहीं युद्ध में सेना की विजय होती है तो हम कहते हैं कि अमुक राजा की जीत हो गयी। वह एक परमात्वतत्त्व ही नाना रूपों में भासता है। सत्व—विष्णु रूप में, रज—ब्रह्मा रूप में तथा तम—शिव रूप में विराजते हैं, भासते हैं। वे परमात्मा तो तीनों गुणों के आश्रय हैं। वही त्रिलोकी की रक्षा करने के लिए अपनी त्रिगुणात्मिका माया से सत्व-रज-तम मय त्रिदेवों के रूप में प्रगट होते हैं। वेदों ने जिस तत्व का प्रतिपादन किया है वही तुम विष्णु हो वही तुम अव्यक्त हो। देवकी माता ने स्तुति करते हुए कहा तुम प्रमाणों से परे हो, परन्तु वस्तु किस प्रकार प्रमाणित हो सकती है, व्यक्त हो सकती है जैसे अग्नि की चिनगारी से अग्नि प्रकाशित नहीं हो सकती। प्रमाणसिद्ध वस्तु दो प्रकार की हैं—एक तो प्रमाण विषय दूसरा प्रमाण उपजीव्य। उपजीव्य कौन? किस शक्ति से नेत्र देखता है? ज्योति कहाँ से आती है? सबका कारण होने से अव्यक्त है, परमाणु में यदि अव्यक्तता तथा कारण है तो वह वेद प्रतिपादित नहीं। केवल ब्रह्म ही प्रतिपादित है। प्रकृति जड़ है, परमात्मा चेतन है—यह लक्षण वैषेशिक का है। ज्ञान-गुण हुआ तब तो? क्योंकि उनका आत्मा चेतन होता है। नहीं उनका आत्मा ज्ञान गुण लेकर चैतन्य होता है। पर वह तो स्वाभाविक रूप से चैतन्य है। आप तो निर्विकार हो और ज्ञान परिणाम होने से विकार हो जायेगा। सत्ता तो केवल विशेष पदार्थों में रहती है। परन्तु यह तत्त्व तो निर्विशेष है; जैसे चुम्बक के पास आकर लोहा स्वयं खिंचता है वैसे ही वह है, वह निरीह है, वही तत्त्व तुम हो। आप बुद्धि को प्रकाश देते हैं तथा अन्य सभी इन्द्रियों के प्रकाशक हो।

'रूपं यत् तत् प्राहुरव्यक्तमाद्यं,
ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुण निर्विकारम्।
सत्ता मात्रं निर्विशेषं निरीहं,
स त्वं साक्षाद् विष्णुरध्यात्मदीपः॥

हे प्रभु! अव्यक्त, परमकारण ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष, निरीह, सत्ता मात्र विशुद्ध सत्त्व बुद्धि आदि के प्रकाशक साक्षात् विष्णु हो। मेरा अन्तःकरण शून्य है परन्तु आपने आकर मेरे अन्तःकरण को प्रकाशित किया है, आप मेरे अध्यात्म-दीप हो।

प्रलय काल में जब सम्पूर्ण पृथ्वी का, सृष्टि का लय हो जाता है तो केवल आप ही रहते हो। 'कलायं कौ पृथ्वियांलीयते' शरीर पंचभूतों में लय हो जाता है। प्रलय काल में पंचमहाभूत अहंकार में, अहंकार महत्तत्व में, महत्तत्त्व प्रकृति में लीन हो जाते हैं, उस प्रलयकाल में प्रभो केवल आप ही शेष रहते हो। इसी से आपका नाम 'शेष' कहा गया है—'भवानेकः शिष्यते शेष संज्ञः'। 'जो काल ब्रह्मा और महेश को भी खा लेता है, जो निमेष से लेकर वर्ष पर्यन्त विभक्त है और जिसकी चेष्टा से सम्पूर्ण विश्व सचेष्ट है वह महाकाल भी हे प्रभु! आपको नहीं व्याप्ता, जिसकी कोई सीमा नहीं है, वह आपकी लीला मात्र है, आप सर्वशक्तिमान क्षेमधाम हैं, मैं आपकी शरण हूँ।' जब तक प्राणी ईश्वर की शरण में नहीं जाता तब तक निर्भय नहीं होता। सबको मृत्यु का भय होता है। संसार में सब की

सब चेष्टायें मरने के भय से हो रही हैं। सम्पूर्ण लोक में कहीं भी जाओ पर मौत रूपी साँप पीछा नहीं छोड़ता। मनुष्य मूर्ख है जो मकान बनाता है—'गृहं शरीरं मानुष्यं' यह शरीर ही मनुष्य का मकान है, फिर मकान के लिये मकान क्यों बनाते हो ?

हम जहाँ निर्भय रह सकते हैं वहां तो जाते नहीं। इस संसार में ही घूमते रहते हैं और भगवान से अपने को दूर रखते हैं। मृत्यु रूपी सर्प भगवान से क्यों डरता है, पता है आपको ? इसीलिए कि वहाँ भगवान के पास गरुड़ हैं जिनके डर के मारे मौत रूपी सर्प भाग जाता है। अतः यदि आप अभयपद प्राप्त करना चाहते हो, अमृतपद प्राप्त करना चाहते हो, परमपद प्राप्त करना चाहते हैं तो भगवान की शरण में जाओ तभी कल्याण होगा। ●●

शरीर और आत्मा

भक्त प्रह्लाद जी दैत्य बालकों को उपदेश दे रहे हैं। सहस्त्रों की संख्या में दैत्य बालक उनके सामने बैठे हैं और उनको वह उपदेश देते हैं। प्रह्लाद जी ने कहा कि यदि आप लोग भी हमारे वचनों पर श्रद्धा रखेंगे तो यह मेरे हृदय का ज्ञान तुम्हारे हृदय में भी आ सकता है।

'भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः।'

श्रद्धा और विश्वास आप रखेंगे तो हमारे हृदय का ज्ञान आपके हृदय में भी आ जायेगा। 'वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्री बालानांच मे यथा' स्त्रियों और बालकों की बुद्धि भी श्रद्धा से मेरे समान ही शुद्ध हो सकती है।

प्रह्लाद जी कहते हैं कि यह जो छह विकार हैं—(१) जायते, (२) अस्ति, (३) वर्धते, (४) विपरिणमते, (५) अपक्षीयते, (६) विनश्यति। संसार में कोई वस्तु पैदा होती है, सत्ता के द्वारा उसका निर्देश करने लगते हैं कि यह वस्तु है, फिर वह बढ़ती है, उसका परिणाम होने लगता है, फिर अपक्षय होने लगता है और फिर वह वस्तु नष्ट हो जाती है—यह जो विकार हैं यह शरीर में तो होते हैं पर शरीर में रहने वाले जो आत्मा है उसमें कोई विकार नहीं होता। देखो यह शरीर के विकार हैं। शरीर पैदा होता है, शरीर बढ़ता है इसका परिणाम होता है, धीरे-धीरे क्षय होने लगता है। शरीर एक दिन नष्ट हो जाता है—

'जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः।
फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वर मूर्तिना॥'

तो यह जन्म-मरण आदि जो षडविकार हैं-प्रह्लाद जी कहते हैं कि यह सब इस शरीर में देखे जाते हैं, यह विकार शरीर में ही होते हैं। शरीर ही पैदा होता है शरीर ही मरता है। जैसे वृक्ष पर फल लगते हैं। 'फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वर मूर्तिना' फिर वे फल पकते हैं और फिर नीचे गिर जाते हैं तो यह विकार किसमें हुए ? फलों में हुए। फल ही उत्पन्न हुए, पके फिर गिर गये, पर वृक्ष ज्यों का त्यों रहता है। वृक्ष पर प्रतिवर्ष फल आते हैं और नष्ट हो जाते हैं, इसी तरह

आत्मा ज्यों का त्यों रहता है शरीर ही मिलता है, नष्ट होता है। तो जैसे वृक्ष ज्यों का त्यों बना रहता है और फल लगते हैं और गिर जाते हैं ऐसे ही आत्मा उसी तरह से एकरस निर्विकार ज्यों का त्यों रहता है और उसको शरीर मिलते हैं और नष्ट हो जाते हैं। तो एक वृक्ष के ऊपर देखो कितनी बार फल लगते हैं, गिर जाते हैं। ऐसे ही आत्मा वृक्ष के समान है और यह शरीर फल के समान है। यह सहस्रों बार, अनन्तबार हुआ। आप गणना नहीं कर सकते कि हमको कितने बार शरीर मिला और कितनी बार नष्ट हुआ, इसकी गणना आपके पास नहीं है। एक भक्त कहता है कि—

"मन्ये धरित्री परमाणु संख्यामुपैतिपित्रोर्गणनान्महयं मित्रान्यमित्रान अनुजीव्य बन्धूनसंख्यानुमीशोस्मि न देव देव ॥"

कोई व्यक्ति चाहे तो पृथ्वी के परमाणु गिन सकता है; परन्तु माता-पिता कितने हुए हैं इसकी गणना नहीं कर सकता। शत्रु-मित्र, बन्धु कितने हुए इसकी तो गणना हो ही नहीं सकती। मैंने जितनी माताओं का दूध पिया है वह सब यदि एकत्र किया जाय तो क्षीर सागर बन जाय; मैंने अपने ममास्पदों के लिये रो-रोकर जो आँसू बहाये हैं वह यदि एक जगह कर दिये जाय तो क्षार समुद्र बन जाय।

जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः।
फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वर मूर्त्तिना ॥'

आत्मा जो है वह शरीर से बिल्कुल पृथक है। आत्मा नित्य है, आत्मा अव्यय, अविनाशी है, आत्मा शुद्ध है, एक है, क्षेत्रज्ञ है, आश्रय है, अविक्रिय है, स्वदृक है, स्वप्रकाश है, हेतु है, व्यापक है, असंग है, अनावृत्त है। तो आत्मा के बारह लक्षण यहां प्रहलाद जी ने बताये। इन बारह लक्षणों से शरीर के भिन्न करके आत्मा को जान लेना चाहिये। आत्मा तो नित्य है और शरीर अनित्य है। आत्मा और शरीर के परस्पर विरुद्ध धर्म है। शरीर से विरुद्ध धर्म वाला आत्मा है। शरीर अनित्य तो आत्मा नित्य है; शरीर विनाशी तो आत्मा अविनाशी है; शरीर का नाश हो जाता है आत्मा का नहीं होता।

'आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध'। आत्मा जैसे शुद्ध है, पवित्र है, शरीर सदा अपवित्र है। **"अत्यन्त मलिनी देहो देहि अत्यन्त निर्मला"**

एक व्यक्ति शौच करने के उपरान्त कुएं पर आया। हाथ-मुंह धोकर कुल्ला किया और जाने लगा तो किसी पण्डित ने कहा कि तुम्हारा मुख तो अभी अशुद्ध है, क्योंकि तुमने शास्त्रविधि के अनुसार सोलहबार कुल्ले नहीं किये। उस व्यक्ति ने पुनः कुएं पर जाकर जल खींचा और सोलह बार कुल्ले किये और सत्रहवां कुल्ला उसने उस पण्डित के ऊपर कर दिया। पण्डित के विरोध करने पर वह व्यक्ति बोला कि अब तो शास्त्रानुसार मेरा मुख शुद्ध हो गया था फिर आप इस सत्रहवें कुल्ले का क्यों विरोध कर रहे हो? उस व्यक्ति ने पुनः कहा कि महाराज चाहे सौ कुल्ले करो मुँह कभी पवित्र नहीं होता।

आत्मा कभी अपवित्र नहीं होता और शरीर सदा अपवित्र है आत्मा कभी अपवित्र नहीं होता और शरीर कभी पवित्र नहीं हो सकता।

आत्मा ज्ञान मयोभूयो देहो मांसमयोऽशुचिः।
तयोरैक्यं प्रपश्यन्ति अज्ञानं किं तत्परम् ॥

आत्मा एक है और शरीर अनेक है। आत्मा क्षेत्रज्ञ है और शरीर क्षेत्र है। आत्मा आश्रय है और शरीर आश्रित है। आत्मा अविक्रिय है शरीर विक्रिय (विकार वाला) है। आत्मा स्वयं प्रकाश है और शरीर पर प्रकाश्य है। आत्मा हेतु है शरीर कार्य है। आत्मा व्यापक है शरीर एक देश में रहने वाला है। आत्मा असङ्ग है, शरीर अनेकों से सम्बन्ध रखने वाला है। आत्मा अनावृत्त है उसको कोई ढक नहीं नहीं सकता और शरीर जो है वह आवृत्त है वस्त्रादि से ढका रहता है—

"एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः।
अहं ममेत्यसदभावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥"

प्रह्लाद जी कहते हैं कि बारह लक्षणों के द्वारा यह शरीर से भिन्न करके आत्मा को जान लेना चाहिए और इस शरीर में जो मैं और मेरा होता है यह मिथ्या अभिनिवेश है, यह झूठा आग्रह है। इसे छोड़ देना चाहिए। शरीर न तो मैं हूँ और न शरीर मेरा है। और जब तक यह होता है कि यह मैं और यह मेरा तो समझो तब

तक यह मिथ्या अभिनिवेश है, झूठा ही है। न तुम शरीर हो न शरीर तुम्हारा है। 'अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत्'। इसको छोड़ देना चाहिये।

जैसे सुवर्ण की खान में जो पत्थर होते हैं वैज्ञानिक उन पत्थरों में से सोने को अलग कर लेते हैं। पत्थर अलग कर लेते हैं और उसमें जो सोना है उसे अलग कर लेते हैं, इसी प्रकार यह शरीर रूपी क्षेत्र से अपनी आत्मा को पृथक करके समझ लेना चाहिये। 'स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः। क्षेत्रेषु योगैस्तद्भिज्ञ आप्नुयात्। क्षेत्रेषु देहेषु तथाऽऽत्मयोगैरध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत्।' जो अध्यात्मविद् है, अध्यात्मवेत्ता हैं, अध्यात्मका विचार करने वाला है वह इस शरीर में ही अपनी आत्मा को पृथक करके साक्षात्कार कर लेता है और ब्रह्मपद को प्राप्त करता है। साक्षाद् ब्रह्म रूप हो जाता है।

'अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः।
विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात्॥'

मूल प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार और पंचतन्मात्राएं—ये आठ प्रकृति है और सत्व, रज, तम तीन उसके गुण हैं वह इनसे पृथक नहीं हैं। सोलह इनके विकार है। दस इन्द्रियाँ, एक मन, पाँच महाभूत इन सबके सब चौबीस तत्वों में एक ही आत्मा अनुगत है, वह एक ही इन सबमें रहने वाला है।

''देहस्तु सर्वसंघातो जगत् तस्थुरिति द्विधा।
अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत् त्यजन्॥'

यह जो शरीर है यह सबका है सबसे मिला है, इन चौबीस तत्त्वों को इकट्ठा करके यह संघात है। चौबीस तत्त्वों से बना है। 'पञ्च-पञ्चाद्भुतंगृहं' पच्चीस तरह के मसालों से तैयार हुआ है यह शरीर। देह उपचये धातु से देह बना है। 'देहस्तु सर्वसंघातो जगत तस्थुरिति-द्विधा'। शरीर दो प्रकार के होते हैं—चलने फिरने वाले और एक जगह डटे रहने वाले। वृक्षादिक वह है जो एक जगह रहते हैं और पशु-पक्षी आदि के शरीर चलते फिरते हैं तो कहा कि 'अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत् त्यजन्।' इस शरीर में ही इन अनात्म वस्तुओं को बांध करके कि 'यह आत्मा नहीं है'—आत्मा को ढूँढना चाहिये। अत्रैव मृग्यः पुरुषो' आत्मा को अपने शरीर में ही ढूँढना चाहिये वह

बाहर नहीं है। वह आत्मा है, परमात्मा है उसे अपने शरीर के भीतर ही ढूँढना चाहिये। नेति नेति करके जो असत् वस्तु है जो आत्मा है, क्योंकि आत्मा सत् है और परमात्मा सत् है तो जो असत् है उसका बाध करो, परित्याग करो इस प्रकार अनात्म वस्तुओं का बाध करते-करते आत्मा शेष रह जाता है। इस प्रकार आत्मा का अन्वेषण कर लेते हैं। नेति नेति करके असत् का त्याग करते-करते जो आत्मतत्व रह जाता है उसका भी साक्षात्कार कर लेते हैं, आत्मा को पहचान लेते हैं। जो वस्तु जहाँ खोई होती है वह अन्यत्र-बाहर तो मिलेगी नहीं। आपका आत्मा इस शरीर में ही खोया हुआ है, अज्ञान के कारण इस शरीर में ही आपका आत्मा है पर दिखाई नहीं देता। जो वस्तु जहां खोई होती है उसको वहीं ढूँढो। 'नहि गृहे नष्टं बहिर्मृग्यते'।

एक बार बुलन्दशहर में हम कथा कह रहे थे। कथा समाप्ति पर एक माई बोली उसकी सोने की जंजीर खो गई। भक्तों ने कहा भगवान का प्रसाद चढ़ाओ मिल जायेगी। अगले दिन वह सत्संग में प्रसाद बाँट रही थी तो पूछने पर ज्ञात हुआ कि घर पर ही उसकी जंजीर मिल गयी जबकि वह ढूँढ रही थी कथा मण्डप में। जंजीर घर पर ही खोई थी वहीं ढूँढने पर मिल गयी। इसी प्रकार आपको इस अपने शरीर में जो आत्म तत्व है उसको अन्वयव्यतिरेकादि क्रम से धीरे-धीरे इस शरीर में ही ढूँढना चाहिये। जैसे गन्ध से उसके आश्रय वायु का ज्ञान होता है, वैसे ही बुद्धि की जो जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति यह परिवर्तनशील तीन वृत्तियां हैं, इनके द्वारा इनमें साक्षी रूप से अनुगत जो आत्मतत्व है, परमात्मतत्व है उसको जान लेना चाहिये, इसी में इस मानव शरीर एवं मानव जीवन की सार्थकता है।

●●

भगवन्नाम की महिमा

भगवान् ने गीता में कहा है कि—

"यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भाव भावित: ।।"

जिस-जिस पदार्थ का स्मरण करके यह प्राणी इस शरीर को त्यागता है—'यं यं वापि स्मरन्भावं'—जिस-जिस पदार्थ का स्मरण करके हम शरीर को त्यागते हैं उसी शरीर को यह जीव ग्रहण कर लेता है। भगवान् ने गीता में यह बताया कि यह आत्मा न तो स्त्री है न पुरुष है, न पशु है न पक्षी है। जिस शरीर में पहुँच जाता है वैसा ही अपने आपको मानने लगता है। अब जो स्त्रियाँ हैं वह ऐसा थोड़े ही है कि पहले जन्म में भी स्त्री ही थीं। पहले यह पुरुष थे और स्त्री का चिन्तन करते-करते शरीर को छोड़ा तो स्त्री की योनि में आ गये।

'यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्' ।

अन्तकाल में मृत्यु के समय जैसा चिन्तन करके, जिसका ध्यान करके शरीर को त्यागता है बस उस ही योनि में जीव चला जाता है। इसीलिये मृत्यु के समय हम भगवान का चिंतन करके शरीर छोड़ें और भगवान का नाम लेकर शरीर छोड़ें—ऐसा हमको अभ्यास करना चाहिये। तो इसके लिये क्या हो ? तो भगवान ने फिर कहा कि—

'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च' ।

इसीलिये अभ्यास बनाओ कि 'सर्वेषु कालेषु'—चलते, फिरते, बस ऐसा अभ्यास करो कि जो किसी प्रयत्न के बिना ही भगवान का नाम निकलने लगे। 'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च ।' अरे। युद्ध के समय भी जब भगवान नाम स्मरण का विधान कर रहे हैं कहते है कि तू युद्ध पीछेकर पहले मेरा स्मरण कर। महाराज! उधर से भीष्म पितामह के बाण आ रहे हैं, कर्ण के बाण आ रहे है, द्रोणा-

चार्य के बाण आ रहे हैं—वहाँ आपका स्मरण कैसे बनेगा ? भगवान कहते हैं कि नहीं 'मामनुस्मर' मेरा स्मरण कर और फिर 'युद्धय च' युद्ध कर। तो जो भगवान हमारे इष्टदेव हैं उन भगवान को तो माने और भगवान की बात न माने तो हमारी क्या आराधना हुई? भगवान को तो मानते हैं और भगवान के वचन रूप जो गीता है उसे नहीं मानते। इसलिये जिन भगवान श्री कृष्ण की हम आराधना करते हैं, जिनका हम ध्यान करते हैं, जो हमारे इष्टदेव हैं, उन्हीं के यह वचन हैं कि—'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च' अगर हर समय हम भगवन्नाम स्मरण का अभ्यास नहीं करेंगे, तो फिर यह नहीं हो सकता कि अंतकाल में भगवान का नाम ही हमारे मुख से निकले।

एक व्यक्ति हापुड़ में मरने लगा मोदी परिवार का ही था। हम वहाँ ठहरे हुए थे हापुड़ में ही। वह व्यक्ति बीमार हुआ मृत्यु का समय आ गया। हमें बुलाने कोई आया हम नहीं गये फिर दोबारा बुलाने आया तो हम वहाँ गये—देखा कि उनको आक्सीजन दी जा रही थी और लोग खड़े थे चारों ओर घेरे हुए। डाक्टर बैठा था। हम गये तो उन्होंने पहचान लिया और वह बार-बार कह रहे थे कि न मालूम मैंने कौन से कर्म किये हैं कि इस समय मुझे कष्ट बहुत हो रहा है। उनके लड़के उनके सामने भगवान का चित्र रखते तो उधर उनका ध्यान उस चित्र में भी नहीं जाता था। वे बोले कि हमें कोका-कोला पिलाओ। अब देखो ! मरने का समय है उन्हें यह भी नहीं हुआ कि यह कहे कि हमारे मुँह में गंगाजल डाल दो, तुलसी डाल दो। भगवान का चित्र उनके सामने कर रहे हैं बार-बार कि इन्हें भगवान का स्मरण ही आ जाय। परन्तु जिस चीज का अभ्यास है, मृत्यु के समय भी अभ्यास की चीज वह कोकाकोला ही माँगा। वे बच्चे आस्तिक थे कैसे देते ? तो अभिप्राय यह है कि मृत्यु के समय उसके ही मुख से भगवान का नाम निकल सकता है जिसने जीवन भर उसका अभ्यास किया हो। मृत्यु के समय अगर होश नहीं है तब तो उधर हमारी कोई विधि नहीं है, जब होश ही नहीं है, हमें कुछ पता ही नहीं है, वायु बढ़ रहा है, त्रिदोष बढ़ रहा है, तो क्या विधि ? परंतु सावधान होते हुए भगवान का नाम नहीं लेता तो यह प्रमाद है। मृत्यु के समय अगर आपको वायु बढ़ रहा है, त्रिदोष में हैं,

आपको कोई होश नहीं है तो फिर वह विधि नहीं है कि उस समय तुम राम नाम लो। उस समय तो तुम विवश हो। वह तो पहले जो आपने पुण्य किये हैं वही सहायता करेंगे, जो आपने पहले किया है वही उस समय भी करोगे। परंतु सावधान होते हुए इधर उधर का हम चिंतन करें और भगवन्नाम न लें, भगवान का चिंतन न करें तो वह अपराध है, वह प्रमाद है। उसके लिये यह विधि है, उसी के लिये जिसके जीवन में अभ्यास है इसीलिये कहा कि 'तस्मात्सर्वेषु कालेषु माम-नुस्मर युद्धय च'।

कहते हैं कि एक पुजारी मरने लगा तो उसने अपने मित्र को बुलाया और उससे कहने लगा कि भाई। अब मेरा अंतिम समय है, मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं, स्त्री है, तुम हमारे मित्र हो, अब तुम इनका ध्यान रखना—ऐसा कहकर वह रोने लगा। आँखों में आँसू आ गये। उसका मित्र अच्छा समझदार था उसने कहा कि अरे देख मित्र। जिस परमात्मा ने इन बच्चों को भेजा है, ये जो तुम्हारी स्त्री और बच्चे हैं उन सबका वह जगत रक्षक परमात्मा पालन पोषण करेगा, इनकी सारी व्यवस्था हो जायेगी, इस समय तू राम-राम कह भगवान का नाम ले। वह व्यक्ति बोला कि जो तू कहता है वह मेरे मुख से नहीं निकलता। देखो! उसने यह भी नहीं कहा कि राम-राम मुख से नहीं निकलता। इतने शब्द तो बोलता है कि जो तू कहता है वह मुँह से नहीं निकलता। मित्र बोला। अरे क्या कहता है यह नहीं कहा जाता कि राम नाम मुख से नहीं निकलता—तो यही प्रमाद है। उसका उसे अभ्यास नहीं है। इसीलिये यह अभ्यास किया जाता है हर समय उस नाम का जिस नाम में भी आपकी श्रद्धा हो, भक्ति हो। सभी नामों की अनंत महिमा है भगवान शिव का नाम लो, राम का नाम लो, कृष्ण का नाम लो, गोविंद का नाम लो, चाहे नारायण-नारायण कहो।

"शिवेति मङ्गलंनाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते'।
भस्मी भवन्ति तस्याशु महापातकराशयः॥"

शिव-शिव यह अकस्मात जिसके मुख से निकल जाता है उसकी पाप राशि समाप्त हो जाती है। तो शिव नाम का अभ्यास करो,

शिव, शिव, 'नमो भगवते साम्ब शिवाय' भगवान शंकर के जो भक्त है वह निरंतर इस मंत्र को जप सकते हैं—'नमो भगवते साम्ब शिवाय' अम्बा के सहित, पार्वती के सहित, भगवान शंकर को नमन करते हैं। तो जो शिव भक्त हों वह शिव नाम लेने का अभ्यास करें, जो विष्णु भक्त हैं वह नारायण नारायण कहा करें; हरि शरणम् कहें, जिसको जो गुरु ने बताया हो जो नाम, मंत्र, उसका निरंतर अभ्यास करना चाहिये। तो ऐसा अभ्यास करना चाहिये कि जैसे बिना प्रयत्न के ही हमारी श्वास आती है जाती है और उस श्वास लेने के लिये हमें प्रयत्न नहीं करना पड़ता। हमारे बिना प्रयत्न के ही श्वास बाहर आती है, भीतर जाती है। इस तरह से ऐसा अभ्यास हो जाय कि बिना प्रयत्न किये ही नाम मुख से निकलता रहे—ऐसा अभ्यास करना चाहिये।

एक कोई लाला थे, वह राम नाम के भक्त थे। राम राम जपते थे। उन्होंने एक महात्मा से कहा कि महाराज! राम राम जपते तो बहुत दिन हो गये उससे तो कोई लाभ है नहीं, कोई और मंत्र बताओ। महात्मा ने कहा कि अरे। राम नाम लेकर तो लाखों व्यक्ति तर गये और तू कहता है कि राम नाम लेने से कोई लाभ नहीं है। बोला! महाराज हमें तो कोई लाभ है नहीं। हम तो बहुत दिन से राम का नाम ले रहे हैं। एक दूसरे महात्मा वहाँ बैठे थे, वह बोले। कि अच्छा हम बतायेगें। पूछा उससे कि कितने दिन हो गये तुझे राम नाम जपते हुए—वह बोला महाराज बीस वर्ष हो गये। महात्मा ने कहा कि तू हमारे पास आना हम तुम्हें मंत्र बतायेंगे जो तुम्हें लाभ-प्रद होगा। प्रातः काल ही पहुँच गये उनके पास पर उन महात्मा ने कहा कि जो तू राम मंत्र जप रहा है उसको पहले छोड़ दे; उसको छोड़कर आ तब फिर हम तुझे दूसरा मंत्र बतलायेंगे तब तुम उसको जपना। उसको बीस वर्ष का अभ्यास था राम-राम जपने का छोड़े तो छोड़ा ही नहीं जावे उससे। उसने बहुत प्रयत्न किया पर नहीं छूटा अंत में महात्मा के पास आकर रोने लगा कि महाराज मैं उसे तो छोड़ नहीं सकता आप और दूसरा मंत्र बता दो। महात्मा बोले कि जब उससे तुम्हें कोई लाभ नहीं है तो छोड़ क्यों नहीं देता? अरे। हम तो मंत्र तब ही बतायेंगे जब पहला छूटे। दो औषधि कैसे दे दें? तू पहले उसे छोड़ तब हम दूसरा मंत्र दें। तो कहते हैं कि वह रोने लगा और

कहने लगा उसे तो छोड़ नहीं सकता, वह तो मुझ से छूटेगा नहीं आप और बता दीजिये। महात्मा ने कहा पागल ! यही वह लाभ है कि जिस भगवान के नाम को हम छोड़ना चाहे और उसे न छोड़ सकें। अरे लाभ हो रहा है पर जानता नहीं है; यह तो सबसे बड़ा लाभ है। भगवान के नाम में इतना मन तुम्हारा अटक गया है कितना तुम्हें अभ्यास हो गया है कि तुम छोड़ना चाहने पर भी नहीं छोड़ सकते, और कहता है कि लाभ नहीं हो रहा है। अरे ! यह तो सबसे बड़ा लाभ है। इसलिये—'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धय च' भगवान कहते हैं कि 'मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर'। कहते हैं भगवान की जो यह स्मृति है वह सारी विपत्तियों को नष्ट कर देती है—'हरि: स्मृति:सर्व विपद्विक्षणम्।' इसलिये परमात्मा का स्मरण, परमात्मा के नाम का स्मरण सदा करते रहने का अभ्यास डाल लेना चाहिये।

भगवान हमारे अनादि, अनंत हैं और भगवान का नाम भी अनादि अनन्त है। भगवान किसी के साथ नहीं रह सकते। भगवान का अगर दर्शन भी हो जाय तुम्हें तो तुम्हारे हाथ मिलाते घूमते रहेगें क्या हमेशा ? नहीं। भगवान का दर्शन भी क्षणिक होगा, थोड़ी देर का ही होगा, तो दर्शन भी हो गया अगर कोई पुण्यात्मा है तो, परन्तु भगवान हर समय तुम्हारे साथ नहीं रह सकते। पर भगवन्नाम तुम्हारा हर समय साथ दे सकता है। भगवान का नाम जो है वह हमारी हर समय रक्षा कर सकता है, हमारे अंत:करण को पवित्र करता है, हमारे साधन को परिपक्व करता है। भगवान का नाम ऐसा है जिसको साधक भी जपतें हैं, सिद्ध भी जपते हैं, जीवन्मुक्त भी जपते हैं। नाम साधक की साधना को बढ़ाता है। 'उल्टा नाम जपा जग जाना, बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना'। बाल्मीकि का चरित्र सुनें। बाल्मीकि जी क्या थे पहले और राम नाम के जाप के प्रताप से उनका कितना बड़ा भारी वैभव हुआ ? राम नाम ने ही तो उनके अंत:करण को निर्मल और शुद्ध बनाया तथा उनको ब्रह्मर्षि बना दिया। राम नाम जपकर साधक सिद्ध हो गया। सिद्ध होकर भी वही करेगा जो साधन अवस्था में किया है। अरे ! सिद्ध होकर कोई साधक क्या करेगा ? क्या सोता रहेगा ? नहीं। वह साधक सिद्ध होने पर भी जाप ही करेगा भगवान के नाम का। देखो। गोवर्धन में एक पण्डित

जी है (श्री गया प्रसाद जी) जाकर देखो उन्हें वह सिद्ध पुरुष हैं, वह भी निरन्तर राम-राम राम जपते रहते हैं। जो जीवन्मुक्त है वह भी राम-राम जप रहे हैं। इसलिये यह जो भगवान का पावन नाम है इसे किसी भी हालत में किसी भी प्रकार जपना चाहिये; चाहे सिद्ध हो चाहे साधक हो, चाहे जीवन्मुक्त हो। बस 'हरेर्नामैवकेवलम्' भगवान का नाम सबके लिये विहित है।

"एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्म परिनिष्ठया।
जन्म लाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः॥"

यह सारे जीवन का फल है। आपने जीवन भर सांख्य शास्त्र का अभ्यास किया, योग शास्त्र का अभ्यास किया, धर्म शास्त्र का अभ्यास किया, अपने धर्म का पालन किया — परन्तु इन सबका फल क्या है है यही कि—'अन्ते नारायणस्मृति:'—अन्त में भगवान का नाम याद आये, भगवान का स्मरण हो। तो अन्त में जो भगवान का नाम लेकर शरीर त्यागता है, वह मरता नहीं है, वह सदा के लिये अमर हो जाता है—'अन्ते नारायण स्मृति:' सब साधनों का फल यह है कि अंत में भगवान का स्मरण हो। कोई गजेन्द्र मोक्ष का पाठ इसलिये करते हैं कि अंत में कुछ बुद्धि हमारी पवित्र हो। गजेन्द्र मोक्ष का फल लिखा है कि मरने के समय भगवान उसे विमल बुद्धि दे देते हैं, जिससे उसको इनका स्मरण होता है। इसीलिये कहा गया कि—

"एतावान् साँख्य योगाभ्यां स्वधर्म परिनिष्ठया:।
जन्म लाभः परः पुंसामन्तेनारायणस्मृतिः॥"

अंत में नारायण की स्मृति होना यह सब साधनों का फल बताया है। तो बताओ कोई योगाभ्यास कर रहा है, कोई बड़े-बड़े कठिन साधन कर रहा है—तो इनका फल क्या है यही कि अंत में नारायण की स्मृति हो। और नारायण स्मृति तब होगी जब तुम्हें अभ्यास होगा। तो देखो आप जीवन में किसी भी नाम को लेकर उसका हर समय अभ्यास करो, चलते, फिरते, बैठते, उठते। वह नाम फिर बिना प्रयत्न के ही मुख से निकलने लगेगा ऐसा अभ्यास हो। महात्मा ने बताया कि एक क्षण के लिए भी भगवान का स्मरण जीव का कल्याण कर देता है; तो दूसरे महात्मा ने कहा कि एक क्षण के

लिये भी इसे छोड़ना नहीं चाहिये। यह नहीं एक क्षण भर को उसे स्मरण कर लेंगे बस। यह नहीं अपितु क्षण भर के लिए भी उसको न छोड़ो। महात्मा कहते हैं कि मरने से डरो मत, मरना सीखो। हमारे जगद्गुरुजी (श्री स्वामी कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज ज्योतिष्पीठ) कहा करते थे कि लोग मरने से डरते हैं पर मरने से डरो मत, मरना सीखो। कैसे मरते हैं ? हाँ तो मरना सीखो ऐसे मरते हैं। राम नाम लेकर, कृष्ण नाम लेकर, भगवन्नाम लेकर सावधानी से शरीर को त्यागो। तो मरना सीखना चाहिये, मरने से डरना नहीं चाहिये। कितनी बार मर चुके हो मरने से क्या डरना।

एक महात्मा कहा करते थे कि मृत्यु तो माता के समान हैं उससे डरने की बात नहीं हैं। जैसे एक माता अपने बच्चे को दूध पिला रही है और उसको एक स्तन अपना बच्चे के मुँह में दे दिया है, बच्चे ने उस स्तन का दूध पी लिया पूरा। अब स्तन में दूध नहीं है। माता उस स्तन को छुड़ा करके दूसरा देना चाहती है कि अब इसमें दूध नहीं है बेटा अब दूसरा ले लो। तब उस बच्चे ने उस स्तन को पकड़ लिया, माता छुड़ाती है तो रोता है, छोड़ता नहीं, क्योंकि उसमें से उसे दूध मिला है, सुख मिला है। उसे वह नहीं छोड़ता। तो कहते हैं कि मृत्यु देवता यही कर रहे हैं कि जैसे वह बच्चा मूक है माता जबरदस्ती छुड़ाकर दूसरे स्तन को लगाना चाहती है तो रोता है। परन्तु फिर दूसरे में सुख मानने लगता है। तो बोले यही जीव की हालत है। मृत्यु देवता कहती हैं कि पहले इस शरीर का भोग समाप्त हो गया है ले तू अब दूसरा शरीर ले ले जब दूसरा शरीर देती है तो तू क्यों चिन्ता करता है ? पर वह कहता है कि नहीं डाक्टर साहिब अबकी बार तो बचा ही लो। उसने इस शरीर से इतना ममता मोह किया हुआ है कि मृत्यु माता कहती है कि इस शरीर का तेरा भोग समाप्त हो गया है तू दूसरा शरीर ले ले तुझे इससे अच्छा शरीर ही मिलेगा; पर उसे छोड़ना नहीं चाहते। महात्मा कहते हैं—कि कोई अस्सी वर्ष का बुड्ढा है, शरीर उसका काँपता है, हाथ कापते हैं जल पीता है तो पी नहीं सकता, चलना फिरना उसका कठिन है। ऐसे सड़े गले शरीर में से नया शरीर देना किसका काम है ? मृत्यु देवता

का ही तो काम है ? तो फिर उससे डरते हो। ऐसे शरीर में से निकालकर तुम्हें नया शरीर मिलेगा, फिर उससे डरना क्या है ? अरे ! उनके पास शरीरों की कमी है क्या ? बस उनमें से निकालकर दूसरा दे देंगी। इसलिए महात्मा लोग कहते हैं कि मरने से डरो मत, मरना सीखो। 'जातो हि को यस्य पुनर्न जन्म'—भगवान् आद्य श्री शंकराचार्य जी महाराज कहते हैं कि जन्म लेना उसका सफल है कि फिर जन्म लेना ही न पड़े। 'मृतो हि को यस्य पुनर्नमृत्यु' मरना उसका सफल है कि फिर दोबारा मरना ही न पड़े। अरे ! मरो भी तो ऐसे मरो इस ढंग से मरो कि फिर मरना ही न पड़े। भगवान का नाम लेकर मरोगे तो फिर नहीं मरना पड़ेगा।
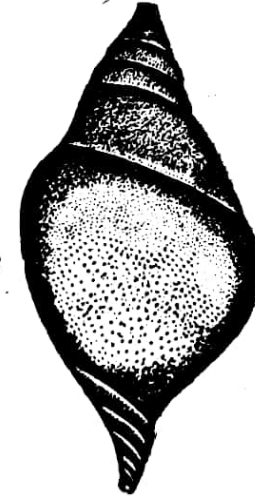
कल्याण का मार्ग

कहा है कि मन्दबुद्धि लोग, अनित्य नाशवान धन इत्यादि को पाकर खुश होते हैं और विपत्ति आने पर बड़े दुःखी होते हैं, बड़ा शोर मचाते है कि अब नहीं सहा जाता आदि आदि।

'नन्दन्ति मन्दाः श्रियमप्यनित्यां
परं विषीदन्ति विपद्गृहीताः।
विवेक दृष्ट्या चरतां नराणां
श्रियो न किञ्चिद् विपदो न किञ्चित् ॥

परन्तु जिन लोगों की विवेक दृष्टि है उनके लिये न धन की प्राप्ति का ही कुछ महत्व है और न विपत्तियों का। श्री मद्भागवत में एक स्थान पर कहा गया है कि तीनों लोकों की धन सम्पत्ति के लोभ से भी जिनके मन में भगवान के स्मरण करने में कोई बाधा नहीं पड़ती, और देवगण भी जिनके लिये लालायित बने रहते है प्रभु के उन चरण कमलों से जिनका मन आधे क्षण के लिये भी चलायमान नहीं होता ऐसे लोग ही उत्तम भक्त हैं।

त्रिभुवन विभव हेतवेऽप्यकुण्ठ-
स्मृतिरजितात्म सुरादिभिर्विमृग्यात्।
न चलति भगवत्पदारविन्दा-
ल्लवनिमिषाधमपि यः स वैष्णवाग्यः ॥

भगवान तो यहाँ तक कहते हैं कि मैं तो भक्तों के वश में हूं, उनके आधीन हूँ, मेरा चित्त तो उन्होंने बांध रखा है—दुर्वासा ऋषि जब सुदर्शन चक्र से घबराकर शरण में आये तो भगवान ने यही कहा कि—'अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इवद्विज साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्त जनप्रियः।' आगे भगवान ने और भी कहा कि सर्वदामुक्त होने पर भी भक्तों के प्रेम की डोर से मैं बंधा हुआ हूं, अजित होते हुए भी मैं उन भक्तों द्वारा जीता जा चुका हूं, यद्यपि मैं अवश किसी

के भी वश में न आने वाला सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हूँ परन्तु भक्तों के वश में हूँ।

'सदा मुक्तोऽपि बद्धोऽस्मि भक्तेषु स्नेहरज्जुभिः।
अजितोऽपि जितोऽहं तैरवशोऽपि वशीकृतः।

तो देखो चाहे आप आपत्ति पड़ने पर घबराकर शोर मचाओ कि हाय मर गये अब सहा नहीं जाता और चाहे हँसते-हँसते धैर्य पूर्वक सहन करते हुए प्रभु की शरण ग्रहण करो यह आपके वश की बात है। भगवान तो हाथ पसारे तुम्हें पकड़ने के लिये आतुर खड़े है। परन्तु तुम उधर को बढ़ते ही नहीं। अरे ! तुम पर तो मांगना भी नहीं आता भगवान बिना मांगे जितना दे सकते हैं उतना तो तुम मांगने की सोच भी नहीं सकते। बस निष्काम भाव से सर्वतो भावेन अपने को भगवान के श्री चरणों में समर्पित कर दो सब कुछ उनके ऊपर छोड़कर, उनको सौंपकर अनन्यगति से शरणागत हो जाओ तो देखो वे प्रभु बड़े अहेतुकी कृपा करने वाले हैं कहते हैं—

"पार्वती फणि बालेन्दु भस्म मंदाकिनी तथा
पवर्ग सहितु देवो अपवर्ग फल प्रदः ॥"

कहते है कि तुम थोड़ा माँगते हो मैं तो अनन्त गुणा दे देता हूँ। 'अपवर्ग' तक प्रदान कर देता हूँ। अपवर्ग माने जिसमें 'पवर्ग' न हो, पवर्ग रहित अर्थात् प=पाप, फ=कर्मफल, ब=बन्ध, भ=भय और म=मात्सर्य-मद-यह जो पवर्ग है पाप-पुण्य, शुभाशुभ कर्मफल, बन्धन, भय, मद मत्सरादि इनके स्थान पर मैं भक्त के पास जो पवर्ग रखता हूँ, छोड़ता हूँ वह है प = पार्वती, फ=फणि, ब=बालेन्दु, भ=भस्म, म=मंदाकिनी। मतलब यह कि पवर्ग रूप भगवान शंकर की उसे प्राप्ति करा के अपवर्ग—मुक्ति प्रदान कर देता हूँ। अतः इस असार संसार में आकण्ठ निमग्न हम आप सबको दुख सुख से बचने के लिए उस परम प्रभु की शरण ग्रहण करना ही उद्धार का एक मात्र उपाय है।

मन के हारे हार है मन के जीते जीत। अपने मन को सांसारिक प्रपंचों से हटाओ और प्रभु स्मरण में उनके चिन्तन में लगाओ बस यही सार है यही तो कर्तव्य है मनुष्य के लिये अन्यथा व्यर्थ के झंझट में पड़ा-पड़ा यूँ ही व्यर्थ में जीवन गवाँ देता है। दुःख सुख में समान

रहने का अभ्यास डालो यह बड़ी ऊँची वस्तु है। एक दिन में यह स्थिति प्राप्त नहीं होती है इसके लिये निरन्तर अभ्यास रत रहने की आवश्यकता पड़ती है। देखो एक दृष्टान्त सुनाते हैं—एक हिरन व्याध के पास आया कि मुझे मार दो, मेरा वध कर दो। व्याध ने पूछा कि तुम क्यों मरना चाहते हो? हिरण ने कहा कि वह अकेला है संसार में, न स्त्री है, न बच्चे हैं. संसार में व्यर्थ ही जीता हूँ, बेकार मेरा जीवन है, मुझे मरना ही ठीक है। इसी बीच एक दूसरा हिरण आया बोला कि हे व्याध! मुझे मार दो, व्याध ने मृग से पूछा कि तुम क्यों मरना चाहते हो? मृग बोला कि मेरा बहुत बड़ा परिवार है और मैं अपनी स्त्री-बच्चों के लिये रात दिन चिन्तित रहता हूँ उनकी भलाई के लिये चिन्ता में पड़ा रहता हूँ—मुझे एक क्षण के लिये भी शान्ति नहीं है अतः मरना चाहता हूँ। क्या अभिप्राय निकला इससे? यही कि सुख-दुःख आपके अनुभव की वस्तु है। उस दूसरे हिरण की बात सुनकर पहला हिरण तुरंत चौकड़ी मारता हुआ वन में भाग गया और सोचता रहा कि अरे मैं तो समझता था कि मैं ही दुःखी हूँ यह तो मुझ से भी अधिक दुःखी है संसार में। अतः कभी अपने को दीन दुःखी न मानो, विपत्ति आने पर अपने से अधिक विपद्ग्रस्त को देखकर सन्तोष करो। यह दुःख सुख आपके मन की वस्तु है अपने को इनसे अलग मानते हुए इसमें निर्लेप भाव से रहने का अभ्यास डाल लो बस आनन्द ही आनन्द है क्योंकि वही तो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है।

एक और दृष्टान्त सुनो! एक भौंरे ने एक तोते की लाल-लाल चोंच को देखा और सोचने लगा कि यह तो लाल पलाश का फूल है इसे देखना चाहिये, इसका रस ग्रहण करना चाहिये। यह सोचकर वह तोते की चोंच की ओर गया। उधर तोते ने काले-काले गोल-गोल भौंरे को अपनी ओर ऊपर से आते देखकर सोचा कि पेड़ से कोई काली जामन गिरी है उसने चोंच खोल दी और जब दोनों मिले तो बड़े घबराये दोनों।

पलाश कुसुम भ्रान्त्या शुकतुण्डे पतत्यधि
सोऽपि जम्बुफल भ्रान्त्या तमलिं धर्तु मिच्छति

इसी प्रकार जब तक स्त्री-पुरुष का विवाह नहीं होता तब तक

एक दूसरे को देखकर प्रसन्नता का अनुभव करते है परन्तु जब पारिवारिक बंधन में बंधकर मिलते है तो अनुभव कुछ अन्यथा ही होता है। अतः आप लोगों का इस संसार के प्रति जो दृष्टिकोण हैं उसमें परिवर्तन लाने की बड़ी आवश्यकता है। गीध संसार में केवल मांस को ही देखता है—'मांसमेव दृश्यन्ति'—हम आप भी गीध की तरह से अपने शरीर का एवं दूसरों के शरीरों का मांस, चाम ही तो देखते हैं और हमारी बुद्धि भी हाड़-मांस-चाम का ही चिन्तन करती है। उसी का दर्शन और उसी का चिन्तन हम आप सब करने में लगे रहते हैं, परंतु इस शरीर के जो भीतर चेतन तत्व निहित है उसका दर्शन तो साधन से ही होता है इन कोरे चर्म चक्षुओं से नहीं। यह बड़ा आश्चर्यजनक सत्य है कि इस असार संसार में प्रतिष्ठा भी इस हाड़-मांस चाम के शरीर की ही होती है। सब इसी को अपना पराया समझकर मानकर जानकर इसी में अहर्निश रमण करते रहते हैं। परंतु वास्तविकता कुछ और ही है। इन स्त्री-पुरुष के शरीरों का निर्माण केवल हाड़-मांस चाम आदि नश्वर पदार्थों से ही नहीं हुआ है। जैसे केवल मिट्टी से मिट्टी का घड़ा नहीं बन सकता ऐसे ही केवल हाड़-मांस आदि से ही हमारे शरीर नहीं बने हैं, इनमें रमने वाला चेतन तत्व कोई और ही है, उसी परमात्मतत्व की खोज करो, उसी का दर्शन करने का प्रयास करो, उसी का स्मरण चिन्तन करो। यही तो विशेषता है मानवजीवन की यह और किसी योनि में नहीं बनने वाला है। ईश्वर ने कृपा करके जो यह नश्वर शरीर दिया है इस नाशवान शरीर से ही उस प्राणवान अविनाशी तत्व को प्राप्त कर लेना ही सच्चा पुरुषार्थ है। इस अस्थि-मांस-रुधिर के पुंज अपवित्र शरीर का अभिमान छोड़कर, स्त्री-पुत्रादि की ममता त्याग कर, इस संसार को नाशवान क्षणभङ्गुर देखते हुए वैराग्य रस का रसिक बनकर भगवान को भक्ति कर भक्तिनिष्ठ हो जा बस यही कल्याण का मार्ग है—

"देहेऽस्थिमांस रुधिरेऽभिमतिं त्यजस्व,
जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च।
पश्यानिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं
वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः॥"

शिवायनमः

शिवेति परमात्मेति शङ्करेति हरेति च ।
पार्वती प्राणनाथेति भज जिह्वे निरन्तरम् ॥

शं सुखं करोतीति शङ्करः—जो सबको सुख प्रदान करने वाले हैं वह शङ्कर हैं।

शेते सर्वमस्मिन्निति शिवः—संपूर्ण विश्व जिसमें शयन करता है अर्थात् जो सम्पूर्ण विश्व का अधिष्ठान है वह शिव तत्व है।

शिवेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते ।
भस्मी भवन्ति तस्याशु महापातकराशयः ॥

शिव ऐसा मङ्गलमय नाम जिसकी वाणी से लिया जाता है उस व्यक्ति के महापातक समुदाय तत्काल भस्म हो जाते हैं।

श्री सावी जी ने अपने पिता से कहा—

यद् द्वयक्षरं नाम गिरेरितं नृणां
सकृत् प्रसङ्गादघमाशु हन्तितत् ।
पवित्र कीर्तिं तमलङ्घ्य शासनम्
भवान हो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः ॥

भागवत् अध्याय ४ स्कन्ध ४

जिनका—'शिव' यह दो अक्षरों का—नाम प्रसङ्गवश एक बार भी मुख से निकल जाने पर मनुष्य के समस्त पापों को तत्काल नष्ट

कर देता है, और जिनकी आज्ञा का कोई भी उल्लङ्घन नहीं कर सकता है अहो उन्हीं पवित्र कीर्ति मङ्गलमय भगवान् शङ्कर से आप द्वेष करते हैं अवश्य ही आप अमङ्गल रूप हैं।

यद् पादपद्मं महतां मनोऽलिभि
निषेवितं ब्रह्मरसास वार्थिभिः ।
लोकस्य यद् वर्षति चाशिषोर्ऽथिनः
तस्मै भवान् द्रुह्यति विश्व वन्धवे ॥

महापुरुषों के मन मधुकर ब्रह्मानन्दमयरस का पान करने की इच्छा से जिनके चरण कमलों का निरन्तर सेवन किया करते हैं और जिनके चरणारविन्द सकाम पुरुषों को उनके अभीष्ट भोग भी देते हैं उन विश्वबन्धु भगवान् शिव से आप बैर करते हैं।

श्री ब्रह्मा जी ने स्तुति करते हुए यह कहा :—

जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनि बीजयोः ।
शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद् ब्रह्म निरन्तरम् ॥

भागवत स्कन्ध ४ अध्याय ६

हे देव मैं जानता हूँ आप सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं क्योंकि विश्व की योनि शक्ति यानि प्रकृति और उसके बीज शिव यानि पुरुष इन दोनों से परे जो एक रस परब्रह्म है वह आप ही हैं।

त्वमेव भगवन्नेतिच्छवशक्तयोः सरूपयोः ।
विश्व सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्ण पटोयथा ॥

भगवन् आप ही मकड़ी के समान अपने स्वरूपभूत शिव शक्ति के रूप में क्रीड़ा करते हुए लीला से ही संसार की रचना पालन और संहार करते रहते हैं।

भगवान् श्री राम ने लङ्का पर विजय प्राप्त करने के लिए शिवलिङ्ग की स्थापना की जो कि रामेश्वरम् के नाम से प्रसिद्ध है और यह निवेदन किया :—

त्वदीयो रावणश्चैव सर्वथा दुर्जयो नृणाम् ।
धर्मे च पक्षपातो वै त्वया कार्यः सदा शिव ॥

हे सदाशिव रावण आप का भक्त है और मैं भी आप का भक्त हूँ अब मेरा रावण के साथ युद्ध होने वाला है मनुष्यों के लिए रावण पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है। आप न मेरा पक्ष लें न रावण का केवल धर्म का पक्षपात करें। जिसकी विजय होने से धर्म की रक्षा होती हो आप उसी की विजय कराएं। ऐसा ही हुआ भगवान् शिव की कृपा से श्री राम जी ने विजय प्राप्त की।

श्री गौर्या सकलार्थं दं निजपदाम्भोजेन मुक्ति प्रदम्
प्रौढं विघ्नवनं हरन्तमनद्यं श्री ढुंढ तुन्डासिना।
वन्दे चर्म कपाल कोप करणैरागय सोख्यात्परं
नास्तीति प्रदिशन्तमन्त विधुरं श्री काशिकेशं शिवम् ॥

जब कोई भगवान् शङ्कर का भक्त सांसारिक कामनाओं से प्रेरित होकर उनकी उपासना करता है तब भगवान् श्री गौरी जी के द्वारा उसकी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर देते हैं। यदि कोई मोक्ष की इच्छा से उपासना करता है उसको अपनी चरण शरण में ले लेते हैं और जो कोई भक्त विघ्न निवारण के लिए शिव की उपासना करता है तो श्री गणेश जी के द्वारा उसके विघ्नों को निवृत्त कर देते हैं। वस्त्रों के स्थान पर जो केवल बाघम्बर और पात्रों के स्थान पर कपाल ही धारण करते हैं ऐसा रहने से मानो यह उपदेश करते हैं कि वैराग्य से अधिक सुख किसी में नहीं है ऐसे श्री काशी-पति भगवान शिव की मैं वन्दना करता हूँ।

शिव का नैवेद्य नहीं खाना चाहिए ऐसा कहना सर्वथा भ्रम मूलक है :—

रोगं हरति निर्माल्यं शोकंतु चरणोदकम्।
अशेषं पातकं हन्ति शम्भो नैवेद्य भक्षणम् ॥१॥

शिव का निर्माल्य रोग को नष्ट करता है, चरणोदक शोक को नष्ट करता है और शिवजी के नैवेद्य का भक्षण सम्पूर्ण पापों को नष्ट करता है। (शिव० पु०)

दृष्ट्वापि शिव नैवेद्यं यान्ति पापानि दूरतः ।
भुक्तेतु शिव नैवेद्ये पुण्यान्यायान्ति कोटिशः ॥२॥

शिवजी के नैवेद्य को देखकर ही पाप दूर चले जाते हैं और शिव जी के नैवेद्य को खाने से तो करोड़ों पुण्य आ जाते हैं।

शिवदीक्षान्वितो भक्तो महाप्रसाद संज्ञकम् ।
सर्वेषामपि लिङ्गानां नैवेद्यं भक्षयेत् शुभम् ॥३॥

शिव जी की दीक्षा से युक्त (अर्थात जिसने शिव की दीक्षा ली हुई है ऐसा) भक्त सारे ही लिङ्गों के नैवेद्य को खाने का अधिकारी है क्योंकि वह नैवेद्य शिव भक्त के लिए महाप्रसाद एवं शुभदायक होता है।

अन्यदीक्षा युत नृणां शिवभक्तिरतात्मनाम् ।
चण्डाधिकोरोय त्रास्ति तद् भोक्तव्यं न मानवैः ॥४॥

जो शिव जी से भिन्न दूसरे देवता की दीक्षा वाले हैं और शिव जी की भक्ति में भी जिनका मन लगा हुआ है ऐसे मनुष्यों को उस शिव नैवेद्य (प्रसाद) को नहीं खाना चाहिए जहाँ चण्ड का अधिकार होता है अर्थात् जहाँ चण्ड का अधिकार नहीं होता है उसे खाने में कोई दोष नहीं है। (चण्ड शिव जी के एक गण का नाम है)। अब यह बताते हैं कि चण्ड का अधिकार कहाँ नहीं होता है।

बाणलिंगे च लौहे च सिद्ध लिंगे स्वयं भुवि ।
प्रतिमासु च सर्वासु न चण्डोऽधिकृतो भवेत् ॥५॥

नर्मदेश्वर अर्थात् नर्मदा के निकले हुए लिङ्ग, स्वर्ण लिङ्ग, किसी सिद्धपुरुष द्वारा स्थापित लिंग, स्वयं प्रकट होने वाले लिंग में तथा शिवजी की सम्पूर्ण प्रतिमाओं में चण्ड का अधिकार नहीं होता है।

अतः इन पर चढ़े प्रसाद को प्रत्येक शिवभक्त खा सकता है।

जिन लिंगों में चण्ड का अधिकार है वहां भी यह व्यवस्था है—

लिंगोपरि च यद् द्रव्यं तदग्राह्यं मुनीश्वराः ।
सुपवित्रं च तज्ज्ञेयं यल्लिंग स्पर्श बाह्यतः ॥६॥

हे मुनीश्वरो ! शिवलिंग के ऊपर जो द्रव्य चढ़ा दिया जाता है उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए, और जो द्रव्य-प्रसाद लिंग स्पर्श से बाहर होता है अर्थात शिवलिंग के समीप में रख कर जो नैवेद्य अर्पण किया जाता है, भोग लगाया जाता है, उसको विशेष रूप से पवित्र जानना चाहिए। अतः ऐसे प्रसाद को सब ग्रहण कर सकते हैं।

□□

संसार की परिभाषा

संसार किसे कहते हैं ? संसार क्या है ?

क्रीडास्पदं बालकानाम् युवनाम् भोगास्पदम् जगत ।
चिन्तास्पदन्तु वृद्धानाम् ज्ञानी तत्रात विच्यते ॥

अर्थात् संसार बच्चों के लिए खेल स्थली है। बच्चों के लिए खेलने का मैदान है। जब वही बच्चे युवावस्था को प्राप्त कर लेते हैं, तो यही क्रीडा स्थली रूपी जगत उनकी भोगभूमि बन जाती है। वृद्ध होने पर वृद्धों के चिंता का स्थान बन जाता है। विवेकियों के लिए यह संसार न तो क्रीडास्थली है और न ही भोगभूमि न ही चितास्पद। विवेकी इसे साधन-भूमि बना लेता है, और इसके द्वारा अपना कल्याण कर लेता है, अर्थात भगवत प्राप्ति कर लेता है।

भगवत-प्राप्ति में अनेक बाधाएं हैं मुख्य तीन का विवेचन करते हैं—

उद्देश्यस्य दुर्लभत्वम ।

अपने लक्ष्य—भगवत प्राप्ति को असंभव समझना। हम भगवान को कैसे प्राप्त कर सकते हैं, उसे प्राप्त करना असंभव ही है। इस प्रकार भगवत प्राप्ति को जो असंभव समझेगा वह प्रयत्न ही क्या करेगा जैसे :—चन्द्रायन (चन्द्रमा को अपने घर लाना) को दुर्लभ समझकर कोई उसका प्रयत्न नहीं करता।

स्वदोषानुसंधानम् अपने दोषों का अनुसंधान करना अर्थात अपने द्वारा किए गए दुष्कृत्यों या पापों का स्मरण करते रहना। भगवान के नाम का स्मरण न करके स्वदोषों का चिंतन भगवत प्राप्ति का दूसरा बाधक है। भगवान तो पतित-पावन हैं, वे पतितों का उद्धार करने

वाले हैं, इसलिए स्वदोषों का चिंतन छोड़कर हमें भगवान के नाम की महिमा का स्मरण करना चाहिए ।

एक महात्मा से किसी साधक ने पूछा कि महाराज जी ! भगवान के नाम के स्मरण की क्या महिमा है ? क्या फल है ? महात्मा जी बोले—भगवान के स्मरण की महिमा का वर्णन तो शेष और शारदा भी नहीं कर सकते, हम कैसे कर सकते हैं । साधक ने विनय की—कुछ तो कहें अपने श्री मुख से । तब महात्मा जी ने कहा कि बैल के सींग पर सरसों रखी जाय, और वह जितने समय ठहर जाय उतने समय किया हुआ भगवत-स्मरण भी जीव का कल्याण कर देता है। वहाँ पर बैठे हुए एक दूसरे महात्मा ने कहा—इससे यह निश्चय कर लो कि बैल के सींग पर सरसों जितनी देर ठहर जाय उतने समय के लिए भी भगवत-भजन नहीं छोड़ना चाहिये । अर्थात एक क्षण के लिए भी भगवत स्मरण नहीं त्यागना चाहिए ।

भगवान ने इस जगत का निर्माण करके इस पर सूचना-पट्ट (साइन-बोर्ड) लगा दिया है कि यह लोक क्या है ? 'अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्वमाम्' ।

भगवान अर्जुन से कहते हैं कि यह संसार अनित्य है और दुख रूप है इसमें आकर के तुम मेरा भजन करो । संसार में सुख नहीं है, दुख ही दुख हैं 'दुःखालयमशाश्वतम्' । कोयले की दुकान में फल नहीं मिलते, सजावट के फल खाये नहीं जा सकते ।

एक व्यक्ति ने अपने लड़के से पाँच किलो आम लाने के लिए कहा। लड़का पिता की आज्ञा मानकर फलों की दुकान में गया, पर उसने साइन बोर्ड (सूचना-पट्ट) नहीं देखा कि हमारी दुकान पर सजावट के फल मिलते हैं। पुत्र ने पांच किलो फल खरीद लिए और घर आकर पिता से कहा कि आम ले आया। उन्होंने कहा कि पानी में डाल दो । पुत्र ने डाल दिये । फिर पिता ने कहा टहल कर आते हैं। पिता-पुत्र दोनों भ्रमण के लिए चल दिए । एक घंटे बाद जब वापस आये, पिता ने कहा —आम की बाल्टी ले आओ। पुत्र बाल्टी ले आया। पिता ने कहा—निकालो आम, चूसेंगे । पुत्र ने बाल्टी में हाथ डाला वह मिट्टी ही मिट्टी थी। पिता ने कहा—तुमसे आम मंगवाये थे । पुत्र ने कहा — आम ही लाया था। पिता ने

कहा—चल उस दुकान पर जहाँ से आम लाया था । पुत्र सहित पिता उस दुकान पर आये और दुकानदार से कहा – कैसे आम दिये जो मिट्टी हो गए । दुकानदार ने कहा—आप के पुत्र की भूल है इसने हमारा सूचना-पट नहीं देखा । हमने साइन-बोर्ड पर स्पष्ट लिख दिया है कि हमारी दुकान पर सजावटी फल मिलते हैं ।

इसी प्रकार हमें भगवान का साइन-बोर्ड याद रखना चाहिए कि यह संसार सुख का नहीं दुख का रूप है । इस संसार में आकर जीव को भगवान के नाम का स्मरण करना चाहिये ।

इस संसार में सुख नहीं है, दुख ही दुख है। अगर सुख की आकांक्षा करते हो तो भगवान की शरण जाना चाहिए ।

अन्यसाधन साध्यत्वम्

यह समझना कि ईश्वर साधनों के द्वारा प्राप्त होगा यह भगवत प्राप्ति का तीसरा बाधक है। मैं उसे इस साधन के द्वारा या उस साधन के द्वारा अर्थात अन्यान्य साधनों के द्वारा प्राप्त कर लूँगा, ऐसा सोचते रहने में उसकी प्राप्ति नहीं होगी अपितु हम ईश्वर या भगवत प्राप्ति उसी की कृपा से कर सकते हैं। जब तक ईश कृपा हमें प्राप्त न होगी हम उसे प्राप्त नहीं कर सकते । इसीलिए भगवान कृष्ण की प्रार्थना करते हुए श्रीमद्भागवत में ब्रह्मा जी ने निवेदन किया कि—"तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम् । हृद्वाग्वपुर्भिविदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दाय-भाक् ।।" अर्थात (जो पुरुष क्षण-क्षण पर बड़ी उत्सुकता से आप की कृपा का ही भली-भांति अनुभव करता रहता है और प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त जो भी सुख या दुःख होता है, उसे निर्विकार मन से भोग लेता है तथा प्रेम पूर्ण हृदय से गद्‌गद् कण्ठ से पुलकित शरीर से अपने आप को प्रभु के श्री चरणों में समर्पित करता रहता है ऐसे व्यक्ति ठीक उसी प्रकार आपके परमपद के अधिकारी हो जाते हैं जैसे पिता की सम्पत्ति का पुत्र अधिकारी हो जाता है)

भगवत-कृपा की अनुभूति करने हेतु हमें हमेशा प्रसन्न रहना चाहिए अर्थात प्रारब्ध के अनुसार जो परिस्थिति हमारे सामने आवे उसमें प्रसन्न रहना हृदय से और वाणी से भगवत गुणगान करते

रहना। अपने को धन्य समझना। प्रारब्ध के अनुसार जो भी स्थिति प्राप्त है उसे ईश प्रेरित समझकर हमें अपने ऊपर भगवत कृपा का अनुभव अपने ऊपर करते रहना चाहिए। जो ये तीन साधन हमेशा करते हैं उन पर भगवान की विशेष कृपा प्राप्त होती है और वे मुक्ति के अधिकारी हो जाते हैं।

"गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम्।
तथा प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥"

जो धर्मात्मा है विवेकी है उसका तो अपना शासन गुरु और शास्त्र है, और जो चोर है अर्थात जो दुष्ट है जो दुरात्मा है उसका शासक राजा है। राजा, दुरात्माओं का तो शासक है और धर्मात्माओं एवं विवेकियों का सेवक। दुष्टों को दण्ड देता हैं और सज्जनों की रक्षा करता है। जो छिपकर पाप करते हैं उनका शासक यम है।

यमो वैवस्वतो राजा सर्वेषाम हृदयेसंस्थितः
तेन चेद् विवावेस्त मा गंगांमा कुरु व्रजो

विवस्वान अर्थात सूर्य के पुत्र यम हमारे हृदय में ही रहते हैं। यदि उनसे हमारा कोई विवाद नहीं यानी हमने छिपकर कोई पाप नहीं किया तो गंगा जाने की आवश्यकता नहीं है कुरुक्षेत्र जाने की आवश्यकता नहीं। तीर्थ यात्रा करो या न करो।

परदारा परद्रव्यो देवद्रोह पराङ्मुखः।
गंगाप्याह कदागतये मा भयं पाव्येयेष्यति ॥

जो परस्त्री, परधन, परद्रोह से पराङ्मुख रहता है वैसे धीर की तो गंगा भी स्तुति करती है—मेरे पास आकर मुझे भी पवित्र करो।

परावादे च मूर्खा परस्त्रीषुनपुंसके
परवित्तेषु अन्धश्चतेषां गंगा पदे पदे।

जहाँ किसी की निंदा होती हो वहाँ जो मौन रहता है, परस्त्री के साथ जो नपुंसक की तरह रहता है और जो परधन को देखता ही नहीं अर्थात परधन के सामने अन्धा बना रहता है उसे तो गंगा स्नान

का फल प्रत्येक पग पर मिलता है।

जो परस्त्री में प्रीति नहीं रखते जो दूसरों के धन को नहीं देखते और जिनकी जिह्वा कभी भी दूसरों की निंदा नहीं करती उनको गंगा पवित्र नहीं करती अपितु वे गंगा को पवित्र करते हैं।

'न तान गंगापुनाति तानेव गंगां पुनाति'

इस संसार में भक्तों ने जीव से चार प्रश्न किये हैं :—

कोऽसि कतमोसि कस्यासि किन्नामोसि

कोऽसि ? तुम कौन हो ? जब तुमसे कोई पूछेगा कि तुम कौन तो तुम बताओगे कि अमुक-अमुक हूँ अर्थात मोहन हूँ श्याम हूँ इत्यादि। यह तो तुम्हारे शरीर का परिचय है यह कल्पना का नाम है। तुम्हारा वास्तविक नाम क्या है ? माता के गर्भ में आने से पहले जो तुम्हारा नाम था वह क्या है ?

कतमोसि ? इस अन्तःकरण चतुष्टय इन्द्रियादि और इन सबका साक्षी इन सबमें तुम कौन हो ?

कस्यासि ? तुम किसके पुत्र हो ? तुम कहोगे मैं मुरारी का पुत्र हूँ या चन्द्रसेन का पुत्र हूँ इत्यादि। संस्कृत में पालितः पिता जो रक्षा करता है उसे पिता कहते हैं तुमने जो नाम लिया वह तो भौतिक पिता का नाम है माता के गर्भ में जिस पिता ने तुम्हारी रक्षा की उस पिता का नाम बताओ? क्या माता के गर्भ में यह पिता तुम्हारी रक्षा कर सकता था? माता के गर्भ में तुम्हें देखने सुनने की शक्ति किसने प्रदान की ?

किन्नामोसि ? तुम्हारा नाम क्या है ? इस शरीर को धारण करने से पहले तुम्हारा नाम क्या था ?

इन चार प्रश्नों के उत्तर जब तक प्राप्त नहीं हो लेते तब तक इस संसार से मुक्ति नहीं हो सकती। यही चार प्रश्न जगद्‌गुरु आद्य-शंकराचार्य ने जड हस्तामलक से पूछे थे।

जीवेली ग्राम में प्रभाकर नाम के एक शास्त्रज्ञ धार्मिक ब्राह्मण रहते थे उनका एकमात्र पुत्र तेरह वर्ष की अवस्था होने पर भी एक

दम जड़वत था गूंगा था। अलौकिक शक्ति सम्पन्न शंकराचार्य के जीवेली ग्राम में पधारने पर वे अपने पुत्र को लेकर आचार्य के पास गये। जड़वत पुत्र आचार्य को देखकर श्री चरणों पर लोट गया तथा उसके पिता ने रोते हुए आचार्य से निवेदन किया प्रभो इस बालक के जड़भाव का कारण क्या है ? मैंने बड़े कष्ट से इसका यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किया है लेकिन यह बोलता ही नहीं वेदादि का अध्ययन तो दूर की बात है। माता-पिता तक नहीं पुकारता भूख प्यास तक नहीं प्रकट करता। इसकी जड़ता के विमोचन की कृपा करें। प्रभाकर की बात सुनकर आचार्य ने बालक से पूछा :—

कस्त्वं शिशो कस्य कुतोऽसि गन्ता
किं नाम ते त्वं आगतोऽसि।
एतद् वद त्वं मम सुप्रसिद्धं
मत्प्रीतये प्रीति विवर्धनोऽसि ॥

हे शिशु तुम कौन हो, किसके पुत्र हो, कहाँ जा रहे हो, तुम्हारा क्या नाम है, कहाँ से आये हो, इन प्रश्नों का स्पष्ट उत्तर देकर मुझे प्रसन्न करो। तुम्हें देखकर मुझे विशेष आनन्द हो रहा है।

शंकराचार्य के प्रश्नों को सुनकर बालक आनन्दित होकर बोल उठा :—

नाहं मनुष्यो न च देव यक्षौ
न ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र
न ब्रह्मचारी न गृही वनस्थी
भिक्षुर्चाहं निज बोध रूपः ॥

मैं मनुष्य नहीं हूँ देवता या यक्ष नहीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र भी नहीं, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, सन्यासी भी नहीं। मैं केवल निजबोध स्वरूप आत्मा हूँ।

यह संसार रूपी सागर अत्यन्त घोर एवं अनन्त है यह दुःखों से

भरा हुआ है, अतएव मनीषीगण तो उस परब्रह्म परमात्मा की शरण ग्रहण करके इस अपार क्लेशमय भयंकर संसार समुद्र से पार हो जाते हैं :—

"संसार सागरं घोरमनन्तं क्लेशभाजनम्।
त्वमेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः ॥"

कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को सदा इस प्रकार का चिंतन करते रहना चाहिये कि यह शरीर सदा रहने वाला नहीं है, अनित्य है, और संसार की धन सम्पत्ति भी सदा रहने वाली नहीं है, तथा प्राणी की मृत्यु तो सदा सर्वदा उसके पास ही रहती है इसलिए सदा धर्म का संग्रह करना ही चाहिये। इस अपार संसार से और उसकी अन्य आकर्षक क्षण भंगुर वस्तुओं से मनुष्य का कल्याण होने वाला नहीं है। कहा गया है कि :—

संसार समुद्र में डूबे हुए शरणार्थी प्राणियों के लिए आत्मज्ञान के अतिरिक्त दूसरा कोई शरण देने वाला नहीं है जिस प्रकार पानी पानी में, दूध-दूध में और घृत-घृत में अभिन्न होकर समा जाता है, एकमेक हो जाता है, उसी प्रकार आत्मा भी परमात्मा में समा जाता है :—

"संसारार्णवमग्नानां भूतानां शरणार्थिनाम्।
नान्यः शरणदः कश्चिदात्म ज्ञानादृते क्वचित्।
यथा जलं जलं क्षिप्तं क्षीरे क्षीरं घृते घृतम्।
अविशेषं भवेत्तद्वदात्मापि परमात्मनि ॥"

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने भी श्री रामचरितमानस में उद्घोषित किया है कि :—

मैं एक भलीभांति निश्चित की हुई बात आपसे कहता हूँ मेरे वचन अन्यथा नहीं है जो मनुष्य भगवान का भजन करते हैं, वे अत्यन्त दुस्तर संसार सागर से पार हो जाते हैं उसे तर जाते हैं।

विनिश्चितं वदामि ते न अन्यथा वचांसि मे।
हरिं नरा भजन्ति येऽतिदुस्तरं तरन्ति ते ॥ ●●